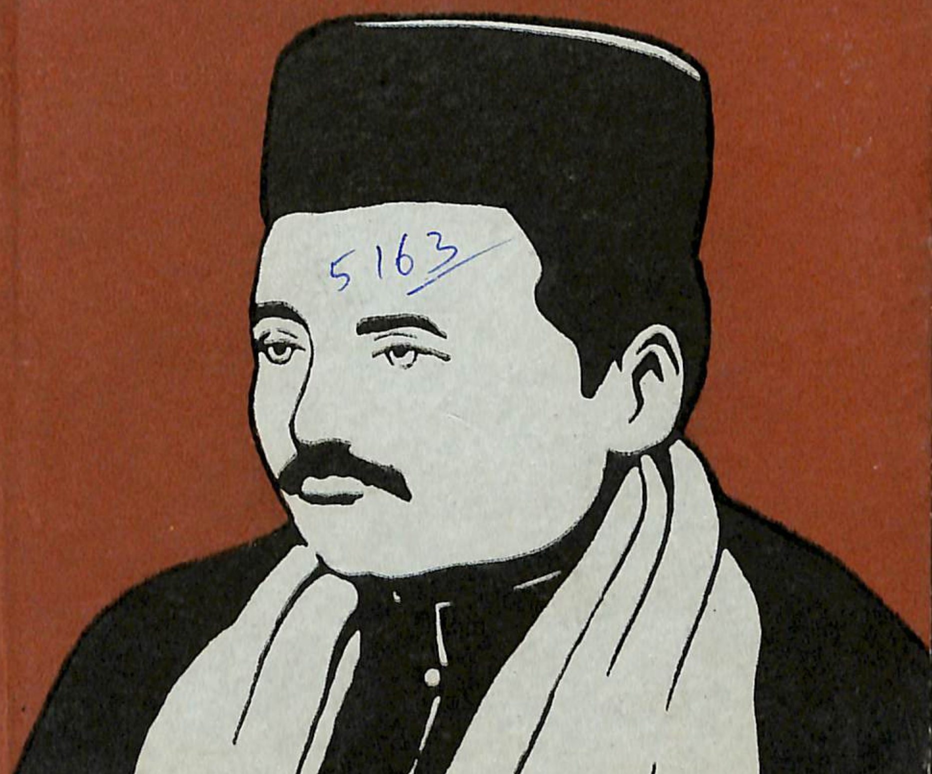
शिवशम्भु के चिट्ठे

बालमुकुन्द गुप्त



ऋषभचरण जैन एवम् सन्तति

बाबू बालमुकुन्द गुप्त

कृत

शिवशम्भु के चिट्ठे

सम्पादक

डॉ० विजयेन्द्र स्नातक



प्रथम संस्करण	१९८५
मूल्य	रु. १५.००
प्रकाशक	दिग्दर्शन चरण जैन ऋषभचरण जैन एवम् सन्तति ४६९२/२१ दरियागंज, नई दिल्ली ११ गार्डन रीच, कुलड़ी मसूरी
मुद्रक	रुचिका प्रिण्टर्स नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

Shivashambhoo ke Chitthe by Babu Balmukund Gupt.
Ed. by Dr. Vijyendra Snatak Price Rs. 15.00

भूमिका

गूंगी प्रजा का वकील : शिवशंभु शर्मा

हिन्दी में व्यंग्य-विनोद की सजीव शैली के पुरस्कर्ताओं में बाबू बालमुकुंद गुप्त के 'शिवशंभु के चिट्ठे' अपना अप्रतिम स्थान रखते हैं। शिवशम्भु के कल्पित नाम से, गुप्तजी ने लार्ड कर्जन के शासनकाल में, भारतीय जनता की दुर्दशा को प्रकट करने के लिए आठ चिट्ठे लिखे थे। ये चिट्ठे उस समय की राजनीतिक गुलामी और लार्ड कर्जन की निर्मम क्रूरताओं को जितने सटीक रूप में प्रस्तुत करते हैं, उतनी पूर्णता के साथ उस समय का कोई दूसरा अभिलेख नहीं करता। इतिहास के पृष्ठों में जो जानबूझकर अंकित नहीं किया गया उसे यदि पढ़ना अभीष्ट हो तो इन चिट्ठों को पलटना चाहिए। ये चिट्ठे १६०३ ई० से १६०५ ई० के मध्य 'भारतमित्र' में प्रकाशित हुए थे। उस समय गुप्तजी ही 'भारतमित्र' के सम्पादक थे।

शिवशंभू परतंत्र देश का नागरिक है। मन बहलाव के लिए वह भांग का सेवन करता है। भांग का नशा उसकी चेतना को विलीन नहीं करता, हल्का-सा सरूर होता है जो मादक ने होकर मन को तरंगायित करने में समर्थ है। मन की इसी प्रमुदित तरंग में शिवशंभु अपने चारों ओर फैले हुए समाज के दु:ख-दर्द की कहानी कहना शुरू करता है। गुलामी की निविड़ शृंखलाओं में जकड़ा हुआ भारतीत शिवशशंभु अपने अस्तित्व को यदि अनुभव कर पाता है तो केवल परतंत्र भारत की पामाली के लिए जो षड्यंत्र अपने शासन काल में रचे, उनका संकेत इन चिट्ठों में लेखक

ने जिस शैली में प्रस्तुत किया है वह निस्संदेह हिन्दी व्यंग्य की बेजोड़-बेमिसाल शैली है ।

लार्ड कर्जन के विषय में प्रसिद्ध है कि वह क्रूर स्वभाव का अहंकारी शासक था । उसके शासन काल में भारतीय जनता को सुख-सुविधाएं प्राप्त होना तो असंभव था ही, प्रत्युत वह तो पहले से प्राप्त अधिकारों को भी छीनने के पक्ष में था । फलत: उसने सिविल सर्विस में भारतीयों के प्रवेश का निषेध किया, उच्च स्तरीय शिक्षा के मार्ग में रोड़े खड़े किये, बंगाल को विभाजित कर देश में फूट के बीज बोए, कर वसूली के काले कानून बनाकर जनता को दु:ख-दैन्य के पाश में कसकर तड़पाया और निर्धन प्रजा का शोषण कर अपने अहं की तुष्टि के लिए दरबार रचाया तथा विक्टोरिया मेमोरियल हाल बनवाया । शिवशम्भु शर्मा ने लार्ड कर्जन की इस 'भड़कबाजी' और 'नुमाइशी' प्रवृत्ति में केवल 'तुमतराक' भरे कामों को देखकर यह उचित समझा कि उन्हें बताया जाए कि वायसराय होकर भी आप भारतीय प्रजा से बहुत दूर हैं । उनके हित से आपका लगाव न होने से आप 'माइलार्ड' होने पर भी इस देश में माई-बाप नहीं बने हैं । इस गुलाम मुल्क की गूंगी प्रजा आपके सामने अपने दु:ख-दर्द नहीं कहती किन्तु वह आपको हिकारत और अवमानना की नजर से देखती है । कौन साहस करे आपसे कुछ कहने का । इसलिए भंगड़ी शिवशंभु को यह दायित्व वहन करना पड़ रहा है ।

यह ठीक है कि इस गुलाम देश की प्रजा आफिशियल प्रतिनिधि बनने का शिवशंभु के पास कोई अधिकार-पत्र या सनद नहीं है तथापि वह इस देश की प्रजा का, यहां के चिथड़ापोश कंगालों का प्रतिनिधि होने का दावा रखता है । क्योंकि उसने इस भूमि में जन्म लिया है । उसका शरीर भारत की मिट्टी से बना है और उसी मिट्टी में अपने शरीर की मिट्टी को एक दिन मिला देने का इरादा रखता है । बचपन में इसी देश की धूल में लोटकर बड़ा हुआ, इसी भूमि के अन्न-जल से उसकी प्राणरक्षा होती है । शिवशंभु को कोई नहीं जानता । जो जानते हैं, वे संसार में एकदम अनजान हैं । उन्हें कोई जानकर भी जानना नहीं चाहता । जानने की चीज शिवशंभु के पास कुछ नहीं है । उसके पास कोई उपाधि नहीं, राजदरबार में उसकी पूछ

नहीं। हाकिमों से हाथ मिलाने की उसकी हैसियत नहीं, उसकी हां में हां मिलानेकी उसकी ताब नहीं। वह एक कपर्दक-शून्य घमंडी ब्राह्मण है। हे राज प्रतिनिधि। क्या उसकी दो-चार बातें सुनिएगा ?

शिवशंभु शर्मा ने अपनी हैसियत और सामर्थ्य की बात जिस गंभीर व्यंग्य में कही है वह भारतीयों की दलित-दमित दशा का ही एक बोलता हुआ शब्दचित्र है। 'बनाम लार्ड कर्ज़न' शीर्षक चिट्ठे में लेखक ने बड़ी प्रखर और निर्भीक वाणी में कर्जन से कहा है कि "जिस पद पर आप आरूढ़ हुए वह आपका मौरूसी नहीं-- नदी नाव संयोग की भांति है। आपके हाथ में कुछ दिन और कुछ करने की शक्ति है। लेकिन माइलार्ड ! क्या आप भी चाहते हैं कि आपके आसपास एक वैसी ही मूर्ति (लार्ड लैंसडौन जैसी) खड़ी हो ? यदि आपको मूर्तियाँ ही स्थापित करनी हैं तो आइए आपको मूर्तियां दिखा दें। "वह देखिए एक मूर्ति है, जो किले के मैदान में नहीं है, पर भारतवासियों के हृदय में बनी हुई है। पहचानिए इसे, इस वीर पुरुष ने मैदान की मूर्ति से इस देश के करोड़ों गरीबों के हृदय में मूर्ति बनवाना अच्छा समझा। यह लार्ड रिपन की मूर्ति है। और देखिए एक स्मृति मंदिर, यह आपके पचास लाख के संगमर्मर से अधिक मजबूत और सैकड़ों गुना अधिक कीमती है। यह स्वर्गीया विक्टोरिया महारानी का सन् १८५८ ई० का घोषणा-पत्र है। आपकी यादगार भी यहीं बन सकती है, यदि इन दो यादगारों की आपके जी में कुछ इज्जत हो।"

लार्ड कर्जन को अपना कार्यकाल पूरा करने के बाद दूसरी बार फिर दो वर्ष के लिए वायसराय नियुक्त किया गया। भारतवासी इस नियुक्ति परु अत्यन्त खिन्न हुए लेकिन वे करते भी क्या—"जो कुछ खुदा दिखाए सो लाचार देखना।" शिवशंभु को भारत प्रभु कर्जन के इस द्विरागमन की सूचना मिली तो उन्होंने भी बेबसी से सिर धुन डाला लेकिन कलम के जरिये माईलार्ड को उनकी पुरानी करनी के लिए कोसते हुए 'श्रीमान् का स्वागत' शीर्षक से दूसरा चिट्ठा लिखा। चिट्ठे में लार्ड कर्जन के काले कारनामों का व्यंग्यमयी भाषा में उल्लेख तो उन्होंने किया ही पर भाग्य-वादी विवश-लाचार भारतीयों की तटस्थ वृत्ति पर भी गहरे प्रहार किए। भारतवासी संघर्षभीरु हैं, किसी भी संकट को स्वीकार करना, निर्लिप्त-

निराकार द्रष्टा की भाँति अतृप्त लोचन से नाटक के पटाक्षेपों को देखना उनका स्वभाव बन गया है। "अथक ऐसे हैं कि कितने ही तमाशे देख गए, पर दृष्टि नहीं हटाते। इन्होंने पृथ्वीराज, जयचंद की तबाही देखी, मुसलमानों की बादशाही देखी। अकबर, बीरबल, खानखाना और तानसेन देखे। शाहजहानी तख्तेताऊस और शाही जलूस देखे। फिर वही तख्त नादिरशाह को उठाकर ले जाते देखा। शिवाजी और औरंगजेब देखे, क्लाइव और हेस्टिंग्स-से वीर बहादुर अंग्रेज देखे। देखते-देखते बड़े शौक से लार्ड कर्जन का हाथियों का जलूस और दिल्ली दरबार देखा। कोई दिखाने वाला चाहिए, भारतवासी देखने को सदा प्रस्तुत हैं। इस गुण में वे मोंछ मरोड़कर कह सकते हैं कि संसार में कोई उनका सानी नहीं।" भारतीयों की यह तमाशाई तबीयत आज भी ज्यों की त्यों है। दिल्ली में रोज जलसे-जलूस रहते हैं और राजधानी की जनता उनमें दर्शकों का फर्ज पूरी तरह अदा करती है। लगता है कि इस मुल्क के बाशिंदों के पास कोई मुस्तकिल काम नहीं है। भीड़-भाड़, जलसे-जलूस, खेल-तमाशे, नाच-गाने, भाषण-नाटक—यही सब होता रहता है और तमाशबीन जनता कामकाज से मुक्त हो इनमें डूबी रहती है। शिवशम्भु इस प्रवृत्ति को ताड़ गए थे और इस पर चोट करना वे न भूले थे।

दूसरी बार वाइसराय होकर आने पर बम्बई में लार्ड कर्ज़न का राजा महाराजाओं ने बड़ी धूमधाम से स्वागत किया। बम्बई की म्युनिस्पैलिटी की ओर से आपके अभिनंदन का विशाल पैमाने पर आयोजन किया गया। इस आयोजन में लार्ड कर्ज़न ने भारतीय जनता के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना तो दूर उसकी कटु शब्दों में आलोचना कर डाली। शिवशम्भु को यह सह्य न हुआ। उन्होंने अपने चिट्ठे में बड़ी स्पष्ट भाषा में बिना किसी लाग-लपेट के लार्ड कर्ज़न को सम्बोधित करते हुए लिखा—"सच मानिए कि आपने इस देश को कुछ नहीं समझा, खाली समझने की शेखी में रहे और आशा नहीं कि इन अगले कई महीनों में भी कुछ समझें। किन्तु इस देश ने आपको खूब समझ लिया और अधिक समझने की जरूरत नहीं रही। × × × आपने गरीब प्रजा की ओर तक भी दृष्टि डालकर नहीं देखा, न गरीबों ने आपको जाना। जब आप अपना पद त्यागकर स्वदेश वापस

जावेंगे तो यह कभी न कह सकेंगे कि भारत की प्रजा का मन अपने हाथ में किया था।

शिवशम्भु की वाणी में न तो कहीं घिघियाहट है और न कहीं मिथ्या अहंकार का दर्प। उन्होंने स्पष्टवादिता को व्यंग्य में सानकर, निर्भीकता का पुट देकर बड़े सहज ढंग से प्रस्तुत किया है। अंग्रेजी राज्य के अखंड प्रताप को शिवशम्भु जानते थे और यह भी जानते थे कि लार्ड कर्ज़न जैसे प्रचंड शासक के विरोध में कुछ भी कहने की शक्ति भारतीयों में नहीं है किन्तु शिवशम्भु न तो भारत के राजा-महाराजा थे और न नौकरशाही के गुलाम पुर्जे। उनका स्वाभिमान परतंत्रता के क्षणों में आहत होने पर भी विनष्ट नहीं हुआ था। इसलिए जब उन्होंने लार्ड कर्ज़न और अंग्रेजों के प्रभुत्व का वर्णन किया तो उस पौराणिक निरंकुश राजा का स्मरण किया जिसे रावण के नाम से जाना जाता है। लेकिन स्मरण की शैली इतनी मोहक और मर्मस्पर्शी कि शिवशम्भु राजनीतिक द्रोह के अपराध में पकड़े न जा सके। भारत के निस्तेज और निर्वीर्य राजा-महाराजों की दशा पर व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं—"भारत के राजा अब आपके हुक्म के बंदे हैं। उनको लेकर चाहे जुलूस निकालिए, चाहे दरबार बनाकर सलाम कराइए, चाहे उन्हें विलायत भिजवाइए, चाहे कलकत्ते बुलवाइए, जो चाहे सो कीजिए, वे हाज़िर हैं। आपके हुक्म की तेजी तिब्बत के पहाड़ों की बरफ को पिघलाती है, फारस की खाड़ी का जल सुखाती है, काबुल के पहाड़ों को नरम करती है। जल, स्थल, वायु और आकाश मंडल में सर्वत्र आपकी विजय है। इस धराधाम में अब अंग्रेजी प्रताप के आगे कोई उंगली उठाने वाला नहीं है। इस देश में एक महाप्रतापी राजा के प्रताप का वर्णन इस प्रकार किया जाता था कि इंद्र उसके यहां जल भरता था, पवन उसके यहां चक्की चलाता था, चांद-सूरज उसके यहां रोशनी करते थे, अग्नि उसके यहां भोजन पकाती थी इत्यादि। पर अंग्रेजी प्रताप उससे भी बढ़ गया है। समुद्र अंग्रेजी राज्य का मल्लाह है, पहाड़ों की उपत्यकाएं बैठने के लिए कुर्सी-मूढ़े। बिजली कलें चलाने वाली दासी और हज़ारों मील खबर लेकर उड़ने वाली दूरी, इत्यादि-इत्यादि।"

लार्ड कर्जन को प्रबोधते हुए शिवशम्भु ने भारतीय विचार-दर्शन का

बड़ी मार्मिक शैली में दुहराया है। राजा मुंज को समझाते हुए बालक भोज ने कहा था, "नैकेनापि समंगता वसुमती मुंजस्त्वया यास्यति।" ठीक उसी भाषा में शिवशम्भु कहते हैं—"विक्रम, अशोक और अकबर के साथ यह भूमि नहीं गई। औरंगजेब-अलाउद्दीन इसे मुट्ठी में दबाकर नहीं रख सके। महमूद, तैमूर और नादिर इसे लूट के माल के साथ ऊंटों और हाथियों पर लादकर न ले जा सके। आगे भी यह किसी के साथ नहीं जाएगी, चाहे कोई कितनी ही मजबूती क्यों न करे।"

भारत की प्रजा को यह आशा थी कि दूसरी बार वाइसराय होकर आने पर लार्ड कर्जन भारतीयों के हित के लिए कुछ न कुछ अवश्य करेंगे। उन्हें ऐसी भी आशा थी कि बड़े लाट अपने भाषण में उन सुधारों का उल्लेख करेंगे जो इस बार वे भारत में करना चाहते हैं किंतु उनका प्रथम भाषण भारतीयों की 'आशा का अंत' करने वाला सिद्ध हुआ। शिवशम्भु को भी इस भाषण से गहरी ठेस पहुंची और उन्होंने अपने पांचवें चिट्ठे में अपनी वेदना को बड़ी व्यंग्यमयी भाषा में अभिव्यक्त किया। शिवशम्भु ने पहले ही वाक्य में कहा —"माइलार्ड, अब के आपके भाषण ने नशा किरकिरा कर दिया। आशा से बंधा यह संसार चलता है। रोगी को रोग से, कैदी को कैद से, ऋणी को ऋण से, कंगाल को कंगाली से—इसी प्रकार हरेक क्लेशित व्यक्ति को एक दिन अपने क्लेश से मुक्त होने की आशा होती है। पर हाय! जब उसकी यह आशा भी भंग हो जाए, उस समय उसके कष्ट का क्या ठिकाना—

"किस्मत पे उस मुसाफिरे खस्ता के रोइये।
जो थक गया हो बैठ के मंजिल के सामने।"

अफसोस माइलार्ड! बड़े लाट होकर आपके भारत में पदार्पण करने के समय इस देश के लोग श्रीमानजी से जो-जो आशाएं करते थे और सुख स्वप्न देखते थे, वह सब उड़नछू हो गए।"

शिवशम्भु शर्मा ने भारतीय जलवायु और यहां के नमक का प्रभाव दिखाते हुए लार्ड कर्जन की कृतघ्नता उद्घाटित करने में बड़े कौशल से काम लिया है। भारत का नमक खाकर भी भारतीयों की निंदा करने वाले कर्जन

को निर्दोष ठहराते हुए कहा कि—"यह तो यहां के नमक की तासीर है। यहाँ का नमक खाकर विचार-बुद्धि खो जाती है। दया और सहृदयता भाग जाती है, उदारता उड़नछू हो जाती है। आंखों पर पट्टी बांधकर कानों में ठीठे ठोककर, नाक में नकेल डालकर, आदमी को जिधर-तिधर घसीटे फिरता है और उसके मुख से खुल्लमखुल्ला इस देश की निन्दा कराता है। आदमी के मन में वह (नमक) यही जमा देता है कि जहां का खाना वहां की खूब निन्दा करना और अपनी शेखी मारते जाना।" कर्ज़न के लिए इससे बढ़कर और क्या व्यंग्य हो सकता है।

भारतवर्ष की जनता नाना प्रकार के कष्टों को झेलती हुई भी राजा को दोषी नहीं ठहराती। वह अपने पूर्वजन्म के कर्मों का फल ही कष्ट में देखती है और फिर भी कर्ज़न अपनी कुटिलता में उसे धूर्त कहता है। शिवशम्भु की कर्ज़न को यह कुटिलता सालती है और उसका मन अपने देश की भोली जनता की दरिद्र दशा पर द्रवित हो उठता है। वह कर्ज़न से कहते हैं कि आप नहीं जान सकते कि हम भारतीयों की नीति-परायणता, सत्यवादिता और धर्मनिष्ठा कैसी है। आपके स्वदेशी यहां बड़ी-बड़ी इमारतों में रहते हैं, जैसे रुचि हो वैसे पदार्थ भोग सकते हैं। भारत आपके लिए भोग्य भूमि है। किन्तु इस देश के लाखों आदमी, इस देश में पैदा होकर आवारा कुत्तों की भांति भटक-भटककर मरते हैं। उनको दो हाथ भूमि बैठने को नहीं, पेट भरकर खाने को नहीं, मैले चिथड़े पहनकर उमरें बिता देते हैं। और अंत में एक दिन कहीं पड़कर चुपचाप प्राण दे देते हैं। इस प्रकार क्लेश पाकर मरने पर भी कभी-कभी वह लोग यह कहते हैं कि पापी राजा है, इससे हमारी यह दुर्गति है। माइलार्ड! वे कर्मवादी हैं। वह यही समझते हैं कि किसी का कोई दोष नहीं—सब हमारे पूर्व कर्मों का दोष है। हाय! हाय! ऐसी प्रजा को आप धूर्त कहते हैं।"

हमारे देश में होली का पर्व उत्साह और उमंग का उत्सव है। इस दिन छोटे-बड़े का भेदभाव दूर कर सभी नागरिक समान रूप में भाईचारे का व्यवहार करते हैं। राजा और प्रजा के बीच की दूरी भी होली के दिन मिट जाती है। शिवशम्भु को ऐसे ही किसी दिन अचानक एक मधुर गीत की टेक सुनाई देती है। कोई बड़ी मस्ती से गा रहा है—"चलो चलें आज खेलें

होली कन्हैया घर।" कनरसिया शिवशम्भु खटिया पर बैठ गए, सोचने लगे कि होली खिलैया कहते हैं कि चलो आज कन्हैया के घर होली खेलेंगे। कन्हैया कौन ब्रज के राजकुमार और खेलने वाले कौन, उनकी प्रजा—ब्रज के ग्वाल-बाल। तो क्या आज हम अपने राजा के साथ होली खेल सकते हैं। लेकिन राजा तो दूर सात समुद्र पार है। राजा का केवल नाम सुना है, न राजा को शिवशम्भु ने देखा है और न राजा ने शिवशम्भु को। ख़ैर राजा न सही उसका प्रतिनिधि तो है, ठीक वैसे ही जैसे कृष्ण द्वारका में थे और उद्धव को ब्रज में अपना प्रतिनिधि बनाकर उन्होंने भेजा था। लेकिन आज तो स्थिति ही विचित्र है। "कृष्ण है, उद्धव है, पर ब्रजवासी उनके निकट भी नहीं फटकने पाते। राजा है, राज-प्रतिनिधि है, पर प्रजा की उन तक रसाई नहीं। सूर्य है, धूप नहीं। चंद्र है चांदनी नहीं, माइलार्ड नगर में ही हैं पर शिवशम्भु उनके द्वार तक नहीं फटक सकता है, उसके घर चलकर होली खेलना तो विचार ही दूसरा है। प्रजा की बोली वह नहीं समझता, उसकी बोली प्रजा नहीं समझती। द्वितीया के चांद की तरह कभी-कभी बहुत देर तक नज़र गड़ाने से उसका चंद्रानन दिख जाता है तो दिख जाता है। यदि किसी दिन शिवशम्भु शर्मा के साथ माइलार्ड नगर की दशा देखने चलते तो वे देखते कि इस महानगर की लाखों प्रजा भेड़ों और सूअरों की की भांति सड़े-गंदे झोंपड़ों में पड़ी लोटती है। उनके आसपास सड़ी बदबू और मैले सड़े पानी के नाले बहते हैं, कीचड़ और कूड़े के ढेर चारों ओर लगे हुए हैं। उनके शरीर पर मैले-कुचैले फटे चिथड़े लिपटे हुए हैं, ऐसी विपन्नावस्था में भारत की प्रजा क्या कहकर अपने राजा और उसके प्रतिनिधि को संबोधन करें। क्या यों कहें कि जिस ब्रिटिश राज्य में हम अपनी जन्मभूमि में एक अंगुल भूमि के अधिकारी नहीं, जिसमें हमारे शरीर को फटे चिथड़े भी नहीं जुड़े और न कभी पापी पेट को पूरा भोजन मिला उस की जय हो। उसके राजप्रतिनिधि हाथियों का जलूस निकालकर सबसे बड़े राज्य हाथी पर चंवर-छत्र लगाकर निकलें और स्वदेश में जाकर प्रजा के सुखी होने का डंका बजावें।"

शिवशम्भु शर्मा को लार्ड कर्ज़न के शासनकाल में जिस घोर दुराशा का सामना करना पड़ा वह उनके छठे चिट्ठे से स्पष्ट लक्षित होता है।

शिवशम्भु ने बड़ी स्पष्ट भाषा में कहा है कि अब राजा और प्रजा के मिल कर होली खेलने का समय गया। जो बाकी था, वह कश्मीर नरेश महाराज रणवीरसिंह के साथ समाप्त हो गया। माइलार्ड अपने शासनकाल का सुन्दर से सुन्दर सचित्र इतिहास स्वयं लिखवा सकते हैं, वह प्रजा के प्रेम की परवा क्यों करेंगे। फिर भी शिवशम्भु शर्मा अपने प्रभु तक संदेश पहुंचा देना चाहता है कि वह आपकी गूंगी प्रजा का एक वकील है और जिसके शिक्षित होकर मुंह खोलने तक आप कुछ करना नहीं चाहते।

लार्ड कर्ज़न को दो वर्ष का समय पूरा होने पर इंगलैंड वापस बुला लिया गया था। उसका जंगी लाट किचनर से विरोध हो गया था और ब्रिटिश सरकार ने कर्ज़न का त्यागपत्र स्वीकार कर किचनर की बात मानी थी। 'विदाई संभाषण' शीर्षक चिट्ठे में इस घटना को गुप्तजी ने बड़ीव्यंग्य-मयी शैली में लिखा है। "अब देखते हैं कि जंगी लाट के मुकाबले में आपने पटखनी खाई, सिर के बल नीचे आ रहे। आपके स्वदेश में वही ऊंचे माने गए, आपको साफ नीचा देखना पड़ा, पदत्याग की धमकी से भी ऊंचे न हो सके।" स्वागत के समय जिन मार्मिक शब्दों में लार्ड कर्जन को परामर्श दिया गया है कि वे पठनीय हैं—"इस संसार के आरम्भ में बड़ा भारी पार्थक्य होने पर भी अंत में बड़ी भारी एकता है। समय अंत में सबको अपने मार्ग पर ले आता है। देशपति राजा और भिक्षा मांगकर पेट भरने वाले कंगाल का परिणाम एक ही होता है। कितने ही शासक और नरेश पृथ्वी पर हो गए। आज उनका कहीं पता-निशान नहीं है। थोड़े-थोड़े दिन अपनी नौबत बजा चले गए। आपमें शक्ति नहीं कि पिछले छह वर्षों को लौटा सकें या उनमें जो कुछ हुआ है उसे अन्यथा कर सकें। किंतु विदाई के समय पूरी दृढ़ता एवं निर्भीकता से कर्जन के शासनकाल को दुःखांत नाटक बताना उस समयके संपादक-धर्म का सर्वश्रेष्ठ निदर्शन है। "आपके शासन-काल का नाटक घोर दुःखांत है और अधिक आश्चर्य की बात यह है कि दर्शक तो क्या स्वयं सूत्रधार भी नहीं जानता कि उसने जो खेल सुखांत समझ-कर खेलना प्रारंभ किया था, वह दुःखांत हो जाएगा।"

विदाई के समय लार्ड कर्जन को अपने क्रूर कृत्यों के लिए पश्चात्ताप नहीं हुआ। उसकी मनःस्थिति को समझकर शिवशम्भु ने कहा कि माइलार्ड

जब तक आपके हाथ में शक्ति रही, आपने भारत की भलाई के लिए कुछ नहीं किया। भारत के बिगाड़ने के लिए आपने क्या-क्या नहीं किया किंतु क्या किसी एक मनुष्य के किए किसी विशाल देश का कुछ बिगड़ सकता है। आपने वंगविच्छेद का बीज बोकर इस देश की जनता को जो पीड़ा पहुंचाई है वह क्या कभी भूली जा सकेगी। तुगलक भी आपके ही स्वभाव का एक शासक पांच सौ वर्ष पहले इस देश में हुआ था। लेकिन इसके बाद दौलताबाद बसाने से दिल्ली उजड़ नहीं गई थी और आपके भी वंग-विच्छेद से बंगाल विनष्ट नहीं होगा। "सब ज्यों का त्यों है। बंग देश की भूमि जहां थी वहीं है और उसका हर एक नगर और गांव जहां था वहीं है। कलकत्ता उठाकर चेरापूंजी के पहाड़ पर नहीं रख दिया गया और शिलांग उड़कर हुगली के पुल पर नहीं आ बैठा। बंगविच्छेद करके माइलार्ड ने अपना एक खयाल पूरा किया है। कितने ही खयाली इस देश में अपना खयाल पूरा करके चले गये × × × आपके इस प्रकार के कारनामों से भारतवासियों के के मन में यह बात जम गई है कि अंग्रेजों से भक्तिभाव करना वृथा है, प्रार्थना करना वृथा है और उनके आगे रोना-गाना वृथा है। दुर्बल की वह नहीं सुनते।"

शिवशम्भु के आठ चिट्ठों के अतिरिक्त बाबू बालमुकुंद गुप्त ने 'कर्जनशाही' शीर्षक से भी बड़े व्यंग्य भरे लेख लिखे थे। उन लेखों में कर्जन के कठोर स्वभाव का वर्णन करते हुए उनकी क्रूरताओं को आलंकारिक शैली में व्यक्त किया गया है। कर्जन के विषय में उन्होंने लिखा है—"अहंकार, आत्मश्लाघा, जिद और गालबजाई में लार्ड कर्जन अपने सानी आप निकले। जब से अंग्रेजी राज्य आरंभ हुआ है तब से इन गुणों में आपकी बराबरी करने वाला एक भी बड़ा लाट इस देश में नहीं आया। भारतवर्ष की बहुत-सी प्रजा के मन में धारणा है कि जिस देश में जल न बरसता हो, लार्ड कर्जन पदार्पण करें तो वर्षा होने लगती है, और जहां के लोग अतिवर्षा और तूफान से तंग हों वहां कर्जन के जाने से स्वच्छ सूर्य निकल आता है।" इस प्रकार की अनेक व्यंग्योक्तियां गुप्तजी के लेखों में छिटकी पड़ी हैं। 'मेले का ऊंट' शीर्षक चिट्ठे में मारवाड़ी समाज की कुरीतियों को 'मारवाड़ी ऐसोसियेशन' द्वारा व्यक्त किया गया है। इनमें से एक व्यंग्य उन सेठ-साहूकारों,

रायबहादुरों पर किया गया है जो चापलूसी द्वारा सरकार में प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। "जिनके बाप-दादा भेड़ की आवाज सुनकर डर जाते थे, जिनको स्वयं चाकू से कलम का डंक काटते भय लगता है उन्हें सरकार ने रायबहादुर बनाया है।"

"जो लिखते अरिहीन पै सदासेल के अंक।
झपत नैन तिन सुतन के कटत कलम को डंक।"

गुप्तजी के पैने व्यंग्य के लिए उनके 'ककराष्टक' और 'होली है' शीर्षक निबंध पठनीय हैं।

बाबू बालमुकुंद गुप्त की शैली ने हिंदी में गद्य के धरातल पर व्यंग्य को प्रतिष्ठित किया। इसके पहले कविता में तो व्यंग्य आ गया था किंतु गद्य के द्वारा गुप्तजी ने उसे व्यावहारिक एवं संप्रेषणीय बनाया। गुप्तजी के चिट्ठों के पाठक अपने समय में सबसे अधिक थे। अंग्रेजी में भी इनका अनुवाद श्री ज्योत्स्येंद्रनाथ बनर्जी ने किया था जो अंग्रेजों में भी चर्चा का विषय बना। हिंदी के कई लेखकों ने इनके अगुकरण का भी प्रयास किया। व्यंग्य-विनोद के माध्यम से राजनीति, समाज, शिक्षा, सुधार और प्रचार के क्षेत्र में जितना काम गुप्तजी ने किया उतना न तो उनसे पहले कोई लेखक कर सका था और न उनके बाद किसी ने इस क्षेत्र में ख्याति अर्जित की। गुप्तजी ने पद्य में भी अनेक रचनाएं कीं किंतु उनकी मौलिक प्रतिभा के दर्शन हमें गद्य में ही होते हैं इसलिए इस लघु लेख में हमने उनकी चुटीली और मार्मिक कविताओं को उदाहरण के रूप में नहीं लिया है। गुप्तजी के पचास से अधिक लेख हैं जो व्यंग्य की दृष्टि से श्लाघ्य होने के साथ तत्कालीन राजनीति, समाज, शिक्षा तथा भारतीय स्थितियों का सजीव चित्र पाठक के सम्मुख उपस्थित करने में समर्थ हैं। भारतेंदु युग के सच्चे वारिस और द्विवेदी युग के उन्नायक के रूप में बाबू बालमुकुंद गुप्त का नाम हिंदी साहित्य के इतिहास में अमिट बना रहेगा।

राणा प्रताप बाग
दिल्ली

विजयेन्द्र स्नातक

श्री:

शिवशम्भुके चिट्ठे

[१]

बनाम लार्ड कर्जन

माइ लार्ड ! लड़कपन में इस बूढ़े भङ्गड़को बुलबुला का बड़ा चाव था। गांवमें कितने ही शौकीन बुलबुलबाज थे। वह बुलबुलें पकड़ते थे, पालते थे और लड़ाते थे। बालक शिवशम्भु शर्म्मा बुलबुलें लड़ानेका चाव नहीं रखता था। केवल एक बुलबुलको हाथपर बिठा कर ही प्रसन्न होना चाहता था। पर ब्राह्मणकुमारको बुलबुल कैसे मिले ? पिता को यह भय कि बालकको बुलबुल दी तो वह मार देगा, हत्या होगी। अथवा उसके हाथसे बिल्ली छीन लेगी तो पाप होगा। बहुत अनुरोधसे यदि पिता ने किसी मित्रकी बुलबुल किसी दिन ला भी दी, तो वह एक घण्टे से अधिक नहीं रह पाती थी। वह भी पिताकी निगरानी में !

सरायके भटियारे बुलबुलें पकड़ा करते थे। गांवके लड़के उनसे दो-दो तीन-तीन पैसेमें खरीद लाते थे। पर बालक शिवशम्भु तो ऐसा नहीं कर सकता था। पिताकी आज्ञा बिना वह बुलबुल कैसे लावे और कहां रखे ; उधर मन में अपार इच्छा थी कि बुलबुल जरूर हाथ पर हो। इसी से जंगल में उड़ती बुलबुल को देखकर जी फड़क उठता था। बुलबुलकी बोली सुनकर आनन्द से हृदय नृत्य करने लगता था। कैसी-कैसी कल्पनाएं हृदय में उठती

थीं। उन सब बातों का अनुभव दूसरों को नहीं हो सकता। दूसरों को क्या होगा, आज यह वही शिवशम्भु है, स्वयं इसीको उस बालकालके अनिर्वचनीय चाव और आनन्दका अनुभव नहीं हो सकता।

बुलबुल पकड़नेकी नाना प्रकारकी कल्पनाएं मन ही मनमें करता हुआ बालक शिवशम्भु सो गया। उसने देखा कि संसार बुलबुलमय है। सारे गांवमें बुलबुलें उड़ रही हैं। अपने घरके सामने खेलनेका जो मैदान है, उसमें सैंकड़ों बुलबुलें उड़ती फिरती हैं। फिर वह सब ऊंची नहीं उड़तीं, बहुत नीची-नीची उड़ती है। उनके बैठने के अड्डे भी नीचे-नीचे हैं। वह कभी उड़कर इधर जाती हैं और कभी उधर, कभी यहां बैठती हैं और कभी वहां, कभी स्वयं उड़ कर बालक शिवशम्भुके हाथकी उंगलियों पर आ बैठती हैं। शिवशम्भु आनन्दमें मस्त होकर इधर-उधर दौड़ रहा है। उसके दो-तीन साथी भी उसी प्रकार बुलबुलें पकड़ते और छोड़ते इधर-उधर कूदते फिरते हैं।

आज शिवशम्भुकी मनोवाञ्छा पूर्ण हुई। आज उसे बुलबुलोंकी कमी नहीं है। आज उसके खेलनेका मैदान बुलबुलिस्तान बन रहा है। आज शिवशम्भु बुलबुलोंका राजा ही नहीं, महाराजा है। आनन्दका सिलसिला यहीं नहीं टूट गया। शिवशम्भुने देखा कि सामने एक सुन्दर बाग है। वहीं से सब बुलबुलें उड़कर आती हैं। बालक कूदता हुआ दौड़कर उसमें पहुंचा। देखा, सोनेके पेड़-पत्ते और सोने ही के नाना रंगके फूल हैं। उन पर सोने की बुलबुलें बैठी गाती हैं और उड़ती फिरती हैं। वहीं एक सोनेका महल है। उसपर सैंकड़ों सुनहरी कलश हैं। उन पर भी बुलबुलें बैठी हैं। बालक दो-तीन साथियों सहित महल पर चढ़ गया। उस समय वह सोनेका बगीचा सोनेको महल और बुलबुलों-सहित एक बार उड़ा। सब कुछ आनन्दसे उड़ता था। बालक शिवशम्भु भी दूसरे बालकों-सहित उड़ रहा था। पर यह आमोद बहुत देर तक सुखदायी न हुआ। बुलबुलोंका खयाल अब बालक के मस्तिष्कसे हटने लगा। उसने सोचा—हैं! मैं कहाँ उड़ा जाता हूं? माता-पिता कहाँ? मेरा घर कहाँ? इस विचारके आते ही सुख-स्वप्न भङ्ग हुआ। बालक कुलबुलाकर उठ बैठा। देखा और कुछ नहीं, अपना ही घर और अपनी ही चारपाई है। मनोराज्य समाप्त हो गया!

आपने माई लार्ड ! जबसे भारतवर्षमें पधारे हैं, बुलबुलोंका स्वप्न ही देखा है या सचमुच कोई करनेके योग्य काम भी किया है ? खाली अपना खयाल ही पूरा किया है या यहाँकी प्रजाके लिए भी कुछ कर्त्तव्य पालन किया ? एक बार यह बातें बड़ी धीरतासे मन में विचारिये । आपकी भारत में स्थितिकी अवधिके पाँच वर्ष पूरे हो गये । अब यदि आप कुछ दिन रहेंगे तो सूदमें, मूलधन समाप्त हो चुका । हिसाब कीजिए, नुमायशी कामों के सिवा कामकी बात आप कौन-सी कर चले हैं और भड़कबाजीके सिवा ड्यूटी और कर्त्तव्य की ओर आपका इस देशमें आकर कब ध्यान रहा है ? इस बारके बजटकी वक्तृता ही आपके कर्त्तव्य-कालकी अन्तिम वक्तृता थी । जरा उसे पढ़ तो जाइये । फिर उसमें आपकी पाँच सालकी किस अच्छी करतूत का वर्णन करते हैं ? आप बारम्बार अपने दो अति तुमतराकसे भरे कामोंका वर्णन करते हैं । एक विक्टोरिया-मेमोरियल हाल और दूसरा दिल्ली-दरबार । पर जरा विचारिये तो यह दोनों काम "शो" हुए या "ड्यूटी" ? विक्टोरिया-मिमोरियल हाल चन्द पेट भरे अमीरोंके एक-दो बार देख आनेकी चीज होगी । उससे दरिद्रोंका कुछ दुःख घट जावेगा या भारतीय प्रजाकी कुछ दशा उन्नत हो जावेगी, ऐसा तो आप भी न समझते होंगे ।

अब दरबारीकी बात सुनिये कि क्या था । आपके खयालसे वह बहुत बड़ी चीज थी । पर भारतवासियों की दृष्टि में वह बुलबुलोंके स्वप्नसे बढ़ कर कुछ न था । जहाँ-जहाँसे वह जुलूसके हाथी आये, वहीं-वहीं सब लौट गए । जिस हाथीपर आप सुनहरी झूलें और सोनेका हौदा लगवाकर छत्रधारणपूर्वक सवार हुए थे, वह अपने कीमती असबाब-सहित जिसका था, उसके पास चला गया । आप भी जानते थे कि वह आपका नहीं और दर्शक भी जानते थे कि आपका नहीं । दरबारमें जिस सुनहरी सिंहासन पर विराजमान होकर आपने भारतके सब राजा-महाराजाओंकी सलामी ली थी, वह भी वहीं तक था और आप स्वयं भली-भांति जानते हैं कि वह आपका न था । वह भी जहां से आया था, वहीं चला गया । यह सब चीजें खाली नुमायशी थीं । भारतवर्षमें वह पहलेहीसे मौजूद थीं । क्या इन सबसे आपका कुछ गुण प्रकट हुआ ? लोग विक्रमको याद करते हैं या

उसके सिंहासनको, अकबरको या उसके तख्तको ? शाहजहांकी इज्जत उसके गुणोंसे थी या तख्तेताऊससे ? आप जैसे बुद्धिमान पुरुषके लिए यह सब बातें विचारनेकी हैं।

चीज वह बननी चाहिए, जिसका कुछ देर कयाम हो। माता-पिताकी याद आते ही बालक शिवशम्भुका सुख-स्वप्न भङ्ग हो गया। दरबार समाप्त होते ही वह दरबार-भवन, वह एम्फीथियेटर तोड़कर रख देनेकी वस्तु हो गया। उधर बनाना, इधर उखाड़ना पड़ा ! नुमायशी चीजोंका यही परिणाम है। उनका तितलियोंका-सा जीवन होता है। माई लार्ड ! आपने कछाड़के चाय वाले साहबोंकी दावत खाकर कहा था कि यह लोग यहां नित्य हैं और हम लोग कुछ दिनके लिए। आपके वह "कुछ दिन" बीत गये। अवधि पूरी हो गई। अब यदि कुछ दिन और मिलें, तो वह किसी पुराने पुण्यके बलसे समझिये। उन्हींकी आशा पर शिवशम्भु शर्म्मा यह चिट्ठा आपके नाम भेज रहा है, जिससे इन मांगे दिनों में तो एक बार आप को अपने कर्त्तव्य का खयाल हो।

जिस पद पर आप आरूढ़ हुए, वह आपका मौरूसी नहीं। नदी-नाव संयोग की भांति है। आगे भी कुछ आशा नहीं कि इस बार छोड़नेके बाद आपका इससे कुछ सम्बन्ध रहे। किन्तु जितने दिन आपके हाथ में शक्ति है, उतने दिन कुछ करने की शक्ति भी है। जो आपने दिल्ली आदिमें कर दिखाया, उसमें आपका कुछ भी न था, पर वह सब कर दिखानेकी शक्ति आपमें थी। उसी प्रकार जानेसे पहले, इस देशके लिए कोई असली काम कर जाने की शक्ति आप में है। इस देशकी प्रजाके हृदयमें कोई स्मृति-मन्दिर बना जानेकी शक्ति आपमें है। पर यह सब तब हो सकता है कि वैसी स्मृतिकी कुछ कदर आपके हृदय में भी हो। स्मरण रहे धातुकी मूर्त्तियोंके स्मृतिचिह्नसे एक दिन किलेका मैदान भर जायेगा। महारानी का स्मृति मन्दिर मैदानकी हवा रोकता था या न रोकता था, पर दूसरों की मूर्तियां इतनी हो जावेंगी कि पचास-पचास हाथ पर हवाको टकराकर चलना पड़ेगा। जिस देश में लार्ड लैंसडौनकी मूर्ति बन सकती है, उसमें और किस-किसकी मूर्त्ति नहीं बन सकती ? माई लार्ड ! क्या आप भी चाहते हैं कि उसके आसपास आपकी भी एक वैसी ही मूर्त्ति खड़ी हो ?

यह मूर्तियां किस प्रकारसे स्मृति चिह्न हैं ? इस दरिद्र देशके बहुतसे धनकी एक ढेरी है, जो किसी काम नहीं आ सकती। एक बार जाकर देखनेसे ही विदित होता है कि वह कुछ विशेष पक्षियों के कुछ देर विश्राम लेनेके अड्डेसे बढ़कर कुछ नहीं है। माइ लार्ड ! आपकी मूर्त्तिकी वहां क्या शोभा होगी ? आइये, मूर्त्तियां दिखावें। वह देखिये, एक मूर्त्ति है, जो किलेके मैदानमें नहीं है, पर भारतवासियों के हृदय में बनी हुई है। पहचानिये, इस वीर पुरुषने मैदानकी मूर्त्ति से इस देशके करोड़ों गरीबों के हृदयमें मूर्ति बनवाना अच्छा समझा। वह लार्ड रिपनकी मूर्त्ति है। और देखिये, एक स्मृति मन्दिर यह आपके पचास लाख के सङ्गमरमर वाले से अधिक मजबूत और सैकड़ों गुना कीमती है। यह स्वर्गीया विक्टोरिया महारानी का सन् १८५८ ई० का घोषणा पत्र है। आपकी यादगार भी यही बन सकती है, यदि इन दो यादगारों की आपके जी में कुछ इज्जत हो।

मतलब समाप्त हो गया। जो लिखना था, वह लिखा गया। अब खुलासा बात यह है कि एक बार शो और ड्यूटीका, मुकाबिला कीजिए। शोको शो ही समझिये। शो ड्यूटी नहीं है। माई लार्ड ! आपके दिल्ली दरबार की याद कुछ दिन बाद उतनी ही रह जावेगी, जितनी शिवशम्भु शर्म्माके सिर में बालकपनके उस सुख-स्वप्न की है !

('भारतमित्र', ११ अप्रैल सन् १९०३ ई०)

[२]

श्रीमान्का स्वागत

जो अटल है, वह टल नहीं सकती। जो होनहार है, वह होकर रहती है। इसीसे फिर दो वर्षके लिए भारत के वैसराय और गवर्नर-जनरल होकर लार्ड कर्जन आते हैं। बहुत से विघ्नोंको हटाते और बाधाओं को भगाते फिर एक बार भारतभूमिमें आपका पदार्पण होता है। इस शुभयात्रा के

लिए वह गत नवम्बर को सम्राट एडवर्डसे भी विदा ले चुके हैं। दर्शन में अब अधिक विलम्ब नहीं है।

इस समय भारतवासी यह सोच रहे हैं कि आप क्यों आते हैं और आप यह जानते भी हैं कि आप क्यों आते हैं। यदि भारतवासियोंका वश चलता तो आपको न आने देते और आपका वश चलता तो और भी कई सप्ताह पहले आ विराजते। पर दोनों ओर की बाग किसी और हीके हाथमें है। निरे बेवश भारतवासियोंका कुछ वश नहीं है और बहुत बातोंपर वश रखने वाले लार्ड कर्जनको भी बहुत बातों में बेबश होना पड़ता है और उक्त श्रीमान्को अपने चलनेमें विलम्ब देखना पड़ा है। कवि कहता है—

"जो कुछ खुदा दिखाये, सो लाचार देखना।"

"अभी भारतवासियोंको बहुत कुछ देखना है और लार्ड कर्जन को भी बहुत कुछ। श्रीमान्के नये शासन-कालके यह दो वर्ष निसन्देह देखनेकी वस्तु होंगे। अभीसे भारतवासियोंकी दृष्टियां सिमटकर उस ओर जा पड़ी हैं। यह जबरदस्त द्रष्टा लोग अब बहुत कालसे केवल निर्लिप्त निराकार तटस्थ द्रष्टाकी अवस्थामें अतृप्त लोचनसे देख रहे हैं और न जाने कब तक देखे जावेंगे। अथक ऐसे हैं कि कितने ही तमाशे देखे गये, पर दृष्टि नहीं हटाते हैं। उन्होंने पृथ्वीराज, जयचन्द की तबाही देखी, मुसलमानों की बादशाही देखी। अकबर, बीरबल, खानखाना और तानसेन देखे, शाहजहानी तख्ते-ताऊस और शाही जुलूस देखे। फिर वही तख्त नादिरको उठाकर ले जाते देखा। शिवाजी और औररंगजेब देखे। क्लाइव, हेष्टिंगससे वीर अंग्रेज देखे। देखते-देखते बड़े शौकसे लार्ड कर्जनका हाथियोंका जुलूस और दिल्ली दरबार देखा। अब गोरे पहलवान मिस्टर सेण्डोकी छातीपर कितने ही मन बोझ उठाना देखनेको टूटे पड़ते हैं। कोई देखानेवाला चाहिये, भारतवासी देखनेको सदा प्रस्तुत हैं। इस गुणमें वह मोंछ मरोड़कर कह सकते हैं कि संसारमें कोई उनका सानी नहीं। लार्ड कर्जन भी अपनी शासित प्रजाका यह गुण जान गये थे, इसीसे श्रीमान्ने लीलामय रूप धारण करके कितनी ही लीलाएं दिखायीं।

इसीसे लोग बहुत कुछ सोच-विचार कर रहे हैं कि इन दो वर्षोंमें भारत प्रभु लार्ड कर्जन और क्या-क्या करेंगे। पिछले पांचसालसे अधिक समयमें

श्रीमान्‌ने जो कुछ किया, उसमें भारतवासी इतना समझने लगे हैं कि श्रीमान्‌की रुचि कैसी है और कितनी बातोंको पसन्द करते हैं। यदि वह चाहें, तो फिर हाथियोंका एक बड़ा भारी जुलूस निकलवा सकते हैं। पर उसकी वैसी कुछ जरूरत नहीं जान पड़ती। क्योंकि जो जुलूस वह दिल्ली में निकलवा चुके हैं, उसमें सबसे ऊंचे हाथी पर बैठ चुके हैं। उससे ऊंचा हाथी यदि सारी पृथ्वी में नहीं, तो भारतवर्ष में और नहीं है। इसीसे फिर किसी हाथी पर बैठने का श्रीमान् को और क्या चाव हो सकता है। उससे ऊंचा हाथी और नहीं है। ऐरावत का केवल नाम है, देखा किसीने नहीं है। मेमथकी हड्डियां किसी-किसी अजायबखानेमें उसी भांति आश्चर्य्य-की दृष्टि से देखी जाती हैं, जैसे श्रीमान् के स्वदेशके अजायबखाने में कोई छोटा-मोटा हाथी। बहुत लोग कह सकते हैं कि हाथी की छोटाई-बड़ाई पर बात नहीं, जुलूस निकले तो फिर भी निकल सकता है। दिल्ली नहीं तो और कहीं सही। क्योंकि दिल्ली में आतशबाजी खूब चल चुकी थी, कलकत्ते में फिर चलायी गयी। दिल्लीमें हाथियोंकी सवारी हो चुकनेपर भी कलकत्ते में रोशनी और घोड़ागाड़ीका तार जमा था, कुछ लोग कहते हैं कि जिस काम को लार्ड कर्जन पकड़ते हैं, पूरा करके छोड़ते हैं। दिल्ली-दरबार में कुछ बातों की कसर रह गयी थी। उदयपुर के महाराणा न तो हाथियोंके जुलूसमें साथ चल सके, न दरबार में हाजिर होकर सालामी देने का मौका उनको मिला। इसी प्रकार बड़ौदा-नरेश हाथियोंके जुलूस में शामिन न थे। वह दरबार में भी आये, तो बड़ी सीधी-सादी पोशाकमें—इतनी सीधी-साधीमें, जितनी से आज कलकत्तेमें फिरते हैं। वह ऐसा तुमतराक और ठाठबाटका समय था कि स्वयं श्रीमान् वैसरायको पतलून तक कारचोबी पहनना और राजा-महाराजाओं को काठकी तथा ड्यूक आफ कनाट को चांदीकी कुरसीपर बिठाकर स्वयं सोने के सिंहासनपर बैठना पड़ा था। उस मौकेपर बड़ौदा-नरेशका इतनी सफाई और सादगीसे निकल जाना, एक नयी आन थी। इसके सिवा उन्होंने झुकके सलाम नहीं किया, बड़ी सादगी से हाथ मिलाकर चल दिये थे। यह कई एक कसरें ऐसी हैं, जिनको मिटानेको फिर दरबार हो सकता है। फिर हाथियोंका जुलूस निकल सकता है।

इन लोगोंके विचारमें कलाम नहीं। पर समय कम है, काम बहुत होंगे। इसके सिवा कई राजा-महाराजा पहले दरबारहीमें खर्च से इतने दब चुके हैं कि श्रीमान् लार्ड कर्जनके बाद यदि दो वैसराय और आवें और पांच-पांचकी जगह सात-सात साल तक शासन करें, तब तक भी उनका सिर उठाना कठिन है। इससे दरबार या हाथियों के जुलूसकी फिर आशा रखना व्यर्थ है। पर सुना है कि अबके विद्या का उद्धार श्रीमान् जरूर करेंगे। उपकारका बदला देना महत् पुरुषों का काम है। विद्याने आपको धनी किया है, इससे आप विद्याको धनी किया चाहते हैं। इसीसे कंगालोंसे छीनकर आप धनियों को विद्या देना चाहते हैं। इससे विद्या का वह कष्ट मिट जावेगा, जो उसे कंगालको धनी बनाने में होता है। नींव पड़ चुकी है, नमूना कायम होनेमें देर नहीं। अब तक गरीब पढ़ते थे, इससे धनियोंकी निन्दा होती थी कि वह पढ़ते नहीं। अब गरीब न पढ़ सकेंगे, इससे धनी पढ़ें या न पढ़ें, उनकी निन्दा न होगी। इस तरह लार्ड कर्जन की कृपा उन्हें वेपढ़े भी शिक्षित कर देगी।

और कई काम हैं, कई कमीशनोंके कामका फैसिला करना है, कितनी ही मिशनोंकी कारवाईका नतीजा देखना है। काबुल है, काशमीर है। काबुल में रेल चल सकती है। काशमीरमें अंगरेजी बस्ती बस सकती है। चायके प्रचार की भांति मोटरगाड़ी के प्रचार की इस देशमें बहुत जरूरत है। बंगालदेश का पार्टीशन भी एक बहुत जरूरी काम है। सबसे जरूरी काम विक्टोरिया-मिमोरियल हाल है। सन् १८५८ ई० की घोषणाको अब भारतवासियों को अधिक स्मरण रखने की जरूरत न पड़ेगी। श्रीमान् स्मृतिमन्दिर बनवाकर स्वर्गीया महारानी विक्टोरिया का ऐसा स्मारक बनवा देंगे, जिसको देखते ही लोग जान जावेंगे कि महारानी वह थी, जिनका यह स्मारक है!

बहुत बातें हैं। सबको भारतवासी अपने छोटे दिमागोंमें नहीं ला सकते। कौन जानता है कि श्रीमान् लार्ड कर्जनके दिमाग में कैसे-कैसे आली खयाल भरे हुए हैं। आपने स्वयं फरमाया था कि बहुत बातों में हिन्दुस्थानी अंगरेजोंका मुकाबला नहीं कर सकते। फिर लार्ड कर्जन तो इंग्लैण्ड के रत्न हैं। उनके दिमागकी बराबरी करनेकी गुस्ताखी करने की यहां के लोगों

को यह बूढ़ा भंगड़ कभी सलाह नहीं दे सकता। श्रीमान् कैसे आली दिमाग शासक हैं, यह बात उनके उन लगातार कई व्याख्यानोंसे टपकी पड़ती है, जो श्रीमान् ने विलायत में दिये थे और जिनमें विलायतवासियों को यह समझाने की चेष्टा की थी कि हिन्दुस्थान क्या वस्तु है। आपने साफ दिखा दिया था कि विलायतवासी यह नहीं समझ सकते कि हिन्दुस्तान क्या है। हिन्दुस्थानको श्रीमान् स्वयं ही समझते हैं। समझते तो क्या समझते ? विलायतमें उतना बड़ा हाथी कहां, जिसपर वह चंवर-छत्र लगाकर चढ़े थे ? फिर कैसे समझा सकते कि वह किस उच्च श्रेणीके शासक हैं। यदि कोई ऐसा उपाय निकल सकता, जिसमें वह एक बार भारतको विलायत में खींच ले जा सकते, तो विलायतवालोंको समझा सकते कि भारत क्या है और श्रीमान्का शासन क्या ? आश्चर्य नहीं, भविष्यमें ऐसा कुछ उपाय निकल आवे, क्योंकि विज्ञान अभी बहुत कुछ करेगा।

भारतवासी जरा भय न करें, उन्हें लार्ड कर्जनके शासन में कुछ करना न पड़ेगा। आनन्द-ही-आनन्द है। चैन से भंग पियो और मौजें उड़ाओ। नजीर खूब कह गया है :—

कूंडीके नकारेपै खुतकेका लगा डंका।
नित भंग पीके प्यारे दिन-रात बजा डंका॥
पर एक प्याला इस बूढ़े ब्राह्मण को देना भूल न जाना।

(भारतमित्र २६ नवम्बर सन् १९०४)

[३ [

वैसराय का कर्त्तव्य

माइ लार्ड ! आपने इस देश में फिर पदार्पण किया, इससे यह भूमि कृतार्थ हुई। विद्वान, बुद्धिमान और विचारशील पुरुषोंके चरण जिस भूमि-पर पड़ते हैं, वह तीर्थ बन जाती है। आपमें उक्त तीन गुणोंके सिवा चौथा

गुण राजशक्ति का है। अतः आपके श्रीचरण-स्पर्शसे भारतभूमि तीर्थसे भी कुछ बढ़कर बन गई। आप गत मंगलवारको फिरसे भारत के राजसिंहासन-पर सम्राट के प्रतिनिधि बनकर विराजमान हुए। भगवान आपका मंगल करे और इस पतित देशके मंगलकी इच्छा आपके हृदयमें उत्पन्न करे।

बम्बईमें पांव रखते ही आपने अपने मन की कुछ बातें कह डाली हैं। यद्यपि बम्बई की म्यूनिसिपलिटीने वह बातें सुननेकी इच्छा अपने अभि-नन्दन-पत्रमें प्रकाशित नहीं की थी, तथापि आपने बेपूछे ही कह डालीं। ठीक उसी प्रकार बिना बुलाये यह दीन भंगड़ ब्राह्मण शिवशम्भु शर्म्मा तीसरी बार अपना चिट्ठा लेकर आपकी सेवामें उपस्थित है। इसे भी प्रजाका प्रतिनिधि होने का दावा है। इसीसे यह राज-प्रतिनिधिके सम्मुख प्रजाका कच्चा चिट्ठा सुनाने आया है। आप सुनिये न सुनिये, यह सुनाकर ही जावेगा।

अवश्य ही इस देशकी प्रजाने इस दीन ब्राह्मणको अपनी सभामें बुलाकर कभी अपने प्रतिनिधि होने का टीका नहीं दिया और न कोई पट्टा ही लिख दिया है। आप जैसे बाजाबता राजप्रतिनिधि हैं, वैसा बाजाबता शिवशम्भु प्रजाका प्रतिनिधि नहीं है। आपको सम्राट ने बुलाकर अपना वैसराय फिर से बनाया। विलायती गजटमें खबर निकली। वही खबर तार द्वारा भारतमें पहुंची। मार्गमें जगह-जगह स्वागत हुआ। बम्बईमें स्वागत हुआ। कलकत्तेमें कई बार गजट हुआ। रेलसे उतरे और राजसिंहासन पर बैठते समय दो बार सलामीकी तोपें सर हुईं। कितने ही राजा नवाब बेगम आपके दर्शनार्थ बम्बई पहुंचे। बाजे बजते रहे, फौजें सलामी देती रहीं। ऐसी एक भी सनद प्रजा-प्रतिनिधि होनेकी शिवशम्भु के पास नहीं है। तथापि वह इस देश की प्रजा का, यहां के चिथड़ापोश कंगालों का प्रति-निधि होने का दावा रखता है। क्योंकि उसने इस भूमिमें जन्म लिया है। उसका शरीर भारत की मिट्टी से बना है और उसी मिट्टी में अपने शरीर की मिट्टी को एक दिन मिला देनेका इरादा रखता है। बचपनमें इसी देश की धूलमें लोटकर बड़ा हुआ, इसी भूमिके अन्न-जलसे उसकी प्राण-रक्षा होती है। इसी भूमि से कुछ आनन्द हासिल करने को उसे भंग की चन्द पत्तियां मिल जाती हैं। गांवमें उसका कोई झोंपड़ा नहीं है; इस पर भूमि-

को छोड़कर उसका संसारमें कहीं ठिकाना भी नहीं है। इस भूमिपर उसका जरा स्वत्व न होनेपर भी इसे वह अपनी समझता है।

शिवशम्भु को कोई नहीं जानता। जो जानते हैं, वह संसारमें एकदम अनजान हैं! उन्हें कोई जानकर भी जानना नहीं चाहता। जानने की चीज शिवशम्भु के पास कुछ नहीं है। उसके कोई उपाधि नहीं, राज-दरबार में उसकी पूछ नहीं। हाकिमसे हाथ मिलानेकी उसकी हैसियत नहीं। उनकी हां में हां मिलने की उसे ताब नहीं। वह एक कपर्दकशून्य घमण्डी ब्राह्मण है। हे राजप्रतिनिधि! क्या उसकी दो-चार बातें सुनियेगा?

आपने बम्बईमें कहा है कि भारतभूमिको मैं किस्सा-कहानीकी भूमि नहीं, कर्त्तव्यभूमि समझता हूं। उसी कर्त्तव्य के पालन के लिये आपको ऐसे कठिन समय में भी दूसरी बार भारत में आना पड़ा। माइ लार्ड! इस कर्त्तव्यभूमिको हम लोग कर्म्मभूमि कहते हैं। आप कर्त्तव्यपालन करने आये हैं और हम कर्म्मों का भोग भोगने। आपके कर्त्तव्यपालनकी अवधि है, हमारे कर्म्मभो की अवधि नहीं। आप कर्त्तव्यपालन करके कुछ दिन पीछे चले आवेंगे। हमें कर्म्म के भोग भोगते-भोगते यहीं समाप्त होना होगा और न जाने फिर भी कब तक वह भोग समाप्त होगा। जब थोड़े दिन के लिये आपका इस भूमिसे स्नेह है, तो हम लोगों का कितना भारी स्नेह होना चाहिये, यह अनुमान कीजिये; क्योंकि हमारा इस भूमिसे जीने-मरने-का साथ है।

माइ लार्ड! यद्यपि आपको इस बातका बड़ा अभिमान है कि अंग्रेजों-में आपकी भांति भारतवर्षके विषयमें शासन-नाति समझने वाला और शासन करनेवाला कोई नहीं है। यह बात विलायत में भी आपने कई बार हेरफेर लगाकर कही और इस बार बम्बईमें उतरते ही फिर कही। आप इस देश में रहकर ७२ महीने तक जिन बातोंकी नींव डालते रहे, अब उन्हें २४ मास या उससे कम में पूरा कर जाना चाहते हैं। सरहदों पर फौलादी दीवार बना देना चाहते हैं, जिससे इस देश की भूमिको कोई बाहरी शत्रु उठाकर अपने घर में न ले जावे! अथवा जो शान्ति आपके कथनानुसार धीरे-धीरे यहां संचित हुई है, उसे इतना पक्काकर देना चाहते हैं कि आपके बाद जो वैसराय आपके राजसिंहासनपर बैठे, उसे शौकीनी और खेल-

तमाशेके सिवा दिनमें और नाच बाल या निद्रा के सिवा और रातको कुछ करना न पड़ेगा। पर सच जानिये कि आपने इस देश को कुछ नहीं समझा। खाली समझने की शेखी में रहे और आशा नहीं कि इन अगले कई महीनों में भी कुछ समझें। किन्तु इस देश में आपको खूब समझ लिया और अधिक समझने की जरूरत नहीं रही। यद्यपि आप कहते हैं कि यह कहानीका देश नहीं, कर्त्तव्य का देश है, तथापि यहांकी प्रजाने समझ लिया है, कि आपका कर्त्तव्य ही कहानी है। एक बड़ा सुन्दर मेल हुआ था अर्थात् आप बड़े घमण्डी शासक हैं और यहां की प्रजा के लोग भी बड़े भारी घमण्डी। पर कठिनाई इस बातकी है कि दोनों का घमण्ड दो तरह का है। आपको जिन बातों का घमण्ड है, उन पर यहां के लोग हंस पड़ते हैं; यहांके लोगों को जो घमण्ड है, उसे आप समझते नहीं और शायद समझेंगे भी नहीं।

जिन आडम्बरों को करके आप अपने मन में बहुत प्रसन्न होते हैं कि बड़ा कर्तव्यपालन किया, वह इस देशकी प्रजा की दृष्टि में कुछ भी नहीं है। वह इतने आडम्बर देख-सुन चुकी और कल्पना कर चुकी है कि और किसी आडम्बरका असर उस पर नहीं हो सकता। आप सरहद को लोहे की दीवार से मजबूत करते हैं। यहां की प्रजा ने पढ़ा है कि एक राजा ने पृथिवी को काबू में करके स्वर्ग में सीढ़ी लगानी चाही थी। आप और लार्ड किचनर मिलकर जो फौलादी दीवार बनाते हैं, उससे बहुत मजबूत एक लार्ड कैनिंग बना गये थे। आपने भी बम्बई की स्पीच में कैनिंगका नाम लिया है। आज ४६ साल हो गये, वह दीवार अटल-अचल खड़ी हुई है। वह स्वर्गीया महारानीका घोषणापत्र है, जो एक नवम्बर १८५८ ई० को कैनिंग महोदयने सुनाया था। वही भारतवर्षके लिए फौलादी दीवार है। वही दीवार भारत की रक्षा करती है। उसी दीवार को भारतवासी अपना रक्षक समझते हैं। उस दीवारके होते आपके या लार्ड किचनरके कोई दीवार बनाने की जरूरत नहीं है। उसकी आड़में आप जी चाहे जितनी मजबूत दीवारों की कल्पना कर सकते हैं।

आडम्बरसे इस देशका शासन नहीं हो सकता। आडम्बरका आदर इस देश की कंगाल प्रजा नहीं कर सकती। आपने अपनी समझमें बहुत कुछ किया; पर फल यह हुआ कि विलायत जाकर वह सब अपने ही मुंहसे

सुनाना पड़ा। कारण यह है कि करनेसे अधिक कहनेका आपका स्वभाव है। इससे आपका करना भी कहे बिना प्रकाशित नहीं होता। यहांकी अधिक प्रजा ऐसी है, जो अब तक भी नहीं जानती कि आप यहांके वैसराय और राजप्रतिनिधि हैं और एक बार विलायत जाकर फिरसे भारतमें आये हैं। आपने गरीब प्रजा की ओर न कभी दृष्टि खोलकर देखा, न गरीबोंने आपको जाना। अब भी आपकी बातोंसे आपकी वह चेष्टा नहीं पाई जाती। इससे स्मरण रहे कि जब अपने पदको त्यागकर आप फिर स्वदेशमें जावेंगे, तो चाहे आपको अपने कितने ही गुण-कीर्तन करनेका अवसर मिले, यह तो भी न कह सकेंगे कि कभी भारतकी प्रजाका मन भी अपने हाथमें किया था!

यह वह देश है, जहांकी प्रजा एक दिन पहले रामचन्द्रके राजतिलक पानेके आनन्दमें मस्त थी और अगले दिन अचानक रामचन्द्र बनको चले, तो रोती-रोती उनके पीछे जाती थी। भरतको उस प्रजाका मन प्रसन्न करनेके लिये कोई भारी दरबार नहीं करना पड़ा, हाथियोंका जुलूस नहीं निकालना पड़ा, वरञ्च दौड़कर वनमें जाना पड़ा और रामचन्द्रको फिर अयोध्यामें लानेका यत्न करना पड़ा। जब वह न आये, तो उनकी खड़ाऊं को सिरपर धरकर अयोध्या तक आये और खड़ाऊंओंको राजसिंहासनपर रखकर स्वयं चौदह साल तक बल्कल धारण करके उनकी सेवा करते रहे। तब प्रजाने समझा कि भरत अयोध्याका शासन करने योग्य हैं।

माइ लार्ड! आप वक्तृता देनेमें बड़े दक्ष हैं। पर यहां वक्तृताका कुछ और ही वजन है। सत्यवादी युधिष्ठिरके मुखसे जो निकल जाता, वही होता था। आयुभरमें उसने एक बार बहुत भारी पोलिटिकल जरूरत पड़नेसे कुछ सहज-सा झूठ बोलनेकी चेष्टा की थी। वही बात महाभारतमें लिखी हुई है। जब तक महाभारत है, वह बात भी रहेगी। एक बार अपनी वक्तृताओंसे इस विषयको मिलाइये और फिर विचारिये कि इस देशकी प्रजाके साथ आप किस प्रकार अपना कर्त्तव्य पालन करेंगे। साथ ही इस समय इस अधेड़ भंगड़ ब्राह्मणको अपनी भाँग-बूटीकी फिकर करनेकी आज्ञा दीजिये।

('भारतमित्र', १७ दिसम्बर सन् १९०४)

[४]

पीछे मत फेंकिये

माइ लार्ड ! सौ साल पूरे होनेमें कई महीनोंकी कसर है। उस समय ईस्ट इण्डिया कम्पनीने लार्ड कार्नवालिसको दूसरी बार इस देश का गवर्नर-जनरल बनाकर भेजा था। तबसे अब तक आप ही को भारतवर्षका फिरसे शासक बनकर आनेका अवसर मिला है। सौ वर्ष पहलेके उस समयकी ओर एक बार दृष्टि कीजिये। तबमें और अबमें कितना अन्तर हो गया है, क्यासे क्या हो गया है। जागता हुआ रंक अति चिन्ताका मारा सो जावे और स्वप्नमें अपनेको राजा देखे, द्वार पर हाथी झूमते देखे अथवा अलिफलैलाके अबुलहसनकी भांति कोई तरुण युवक प्यालेपर उड़ाता घरमें बेहोश हो और जागनेपर आंखें मलते-मलते अपने को बगदाद का खलीफा देखे, आलीसान सजे महलकी शोभा उसे चक्करमें डाल दे, सुन्दरी दासियोंके जेवर और कामदार वस्त्रोंकी चमक उसकी आंखोंमें चकाचौंध लगा दे तथा सुन्दर बाजों और गीतोंकी मधुर ध्वनि उसके कानोंमें अमृत ढालने लगे—तब भी उसे शायद आश्चर्य न हो, जितना सौ साल पहले के भारतमें अंगरेजी राज्यकी दशाको आजकलकी दशाके साथ मिलानेसे हो सकता है।

जुलाई सन् १८०५ ई० लार्ड कार्नवालिस दूसरी बार भारतके गवर्नर-जनरल होकर कलकत्तेमें पधारे थे। उस समय ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी सरकारपर चारों ओरसे चिन्ताओंकी भरमार हो रही थी, आशंकाएं उसे दम नहीं लेने देती थीं। हुलकरसे एक नई लड़ाई होनेको थी। सेंधियासे लड़ाई चलती थी। खजानेमें बरकत-ही-बरकत थी। जमीनका कर वसूल होनेमें बहुत देर थी। युद्धस्थलमें लड़नेवाली सेनाओंको पांच-पांच महीनेसे तनख्वाह नहीं मिली थी। विलायतके धनियोंमें कम्पनीका कुछ विश्वास न था। सत्तर सालका बूढ़ा गवर्नर-जनरल यह सब बातें देखकर घबराया हुआ था। उससे केवल यही बन पड़ा कि दूसरी बार पदारूढ़ होनेके तीन ही मास पीछे गाजीपुरमें जाकर प्राण दे दिया। कई दिन तक इस बातकी खबर भी लोगोंने नहीं जानी। आज विलायतसे भारत तक दिनमें कई बार तार दौड़

जाता है। कई एक घण्टोंमें शिमलेसे कलकत्ते तक स्पेशल ट्रेन पार हो जाती है। उस समय कलकत्तेसे गाजीपुर जानेमें बड़े लाटको कितने ही दिन लगे थे। गाजीपुरमें उनके लिये कलकत्तेसे जल्द किसी प्रकारकी सहायता पहुंचने का कुछ उपाय न था।

किन्तु अब कुछ और ही समय है। माइ लार्ड ! लार्ड कार्नवालिसके दूसरी बार गवर्नर-जनरल होकर भारतमें आने और आपके दूसरी बार आने में बड़ा अन्तर है। प्रताप आपके साथ-साथ है। अंगरेजी राज्यके भाग्यका सूर्य्य मध्याह्नमें है। उस समयके बड़े लाटको जितने दिन कलकत्तेसे गाजीपुर जानेमें लगे होंगे, आप उनसे कम दिनमें विलायतसे भारतमें पहुंच गये। लार्ड कर्नवालिस को आते ही दो-एक देशी रईसोंके साथ लड़ाई करनेकी चिन्ता थी, आपके स्वागतके लिये कोड़ियों राजा-रईस बम्बई दौड़े गये और जहाजसे उतरते ही उन्होंने आपका स्वागत करके अपने भाग्यको धन्य समझा। कितने ही बधाई देने कलकत्ते पहुंचे और कितने और चले आ रहे हैं। प्रजाकी चाहे कैसी ही दशा हो, पर खजानेमें रुपये उबले पड़ते हैं। इसके लिये चारों ओरसे आपकी बड़ाई होती है। साख इस समयकी गवर्नमेण्टकी इतनी है कि विलायतमें या भारतमें एक बार हूं करते ही रुपयेकी वर्षा होने लगती है। विलायती मंत्री आपकी मुट्ठीमें है। विलायतकी जिस कन्सर्वेटिव गवर्नमेण्टने आपको इस देशका वैसराय किया, वह अभी तक बराबर शासन की मालिक है। लिबरल निर्जीव हैं। जान ब्राइट, ग्लाडस्टोन ब्राडला जैसे लोगोंसे विलायत शून्य है, इससे आप परम स्वतन्त्र हैं। इण्डिया आफिस आपके हाथकी पुतली है। विलायतके प्रधान-मंत्री आपके प्रिय मित्र हैं। जो कुछ आपको करना है, वह विलायतमें कई मास रहकर पहले ही वहांके शासकोंसे निश्चय कर चुके हैं। अभी आपकी चढ़ती उमर है। चिन्ता कुछ नहीं है ! जो कुछ चिन्ता थी, वह भी जल्द मिट गई। स्वयं आपकी विलायत के बड़े भारी बुद्धिमानों और राजनीति-विशारदोंमें गिनती है। वरञ्च कह सकते हैं कि विलायतके मंत्री लोग आपके मुंहकी ओर ताकते हैं। सम्राटका आप पर बहुत भारी विश्वास है। विलायतके प्रधान समाचारपत्र मानो आपके बन्दीजन हैं। बीच-बीचमें आपका गुणगान सुनना पुण्य कार्य्य समझते हैं। सारांश यह कि लार्ड कार्नवालिसके समय और आपके समयमें

बड़ा ही भेद हो गया है।

संसारमें अब अंगरेजी प्रताप अखण्ड है। भारतके राजा अब आपके हुक्मके बन्दे हैं। उनको लेकर चाहे जुलूस निकालिये, चाहे दरबार बनाकर सलाम कराइये, उन्हें चाहे विलायत भिजवाइये, चाहे कलकत्ते बुलवाइये, जो चाहे सो कीजिये, वह हाजिर हैं। आपके हुक्मकी तेजी तिब्बतके पहाड़ों की बरफको पिघलाती है। फारिसकी खाड़ीका जल सुखाती है, काबुलके पहाड़ोंको नर्म करती है। जल, स्थल वायु और आकाशमण्डलमें सर्वत्र आपकी विजय है। इस धराधाममें अब अंगरेजी प्रतापके आगे कोई उंगली उठानेवाला नहीं है। इस देशमें एक महाप्रतापी राजाके प्रतापका वर्णन इस प्रकार किया जाता था कि इन्द्र उसके यहां जल भरता था, पवन उसके यहां चक्की चलाता था, चांद-सूरज उसके यहाँ रोशनी करते थे इत्यादि। पर अंगरेजी प्रताप उससे भी बढ़ गया था। समुद्र अंगरेजी राज्यका मल्लाह है, पहाड़ोंकी उपत्यकाएं बैठनेके लिये कुर्सी-मूढ़े। बिजली कलें चलानेवाली दासी और हजारों मील खबर लेकर उड़नेवाली दूती। इत्यादि-इत्यादि।

आश्चर्य्य है माइ लार्ड! एक सौ सालमें अंगरेजी राज्य और अंगरेजी प्रतापकी तो इतनी उन्नति हो; पर उसी प्रतापी ब्रिटिश राज्य के अधीन रहकर भारत अपनी रही-सही हैसियत भी खो दे! इस अपार उन्नतिके समयमें आप जैसे शासकके जीमें भारतवासियोंको आगे बढ़ानेकी जगह पीछे धकेलनेकी इच्छा उत्पन्न हो! उनका हौसला बढ़ानेकी जगह उनकी हिम्मत तोड़नेमें आप अपनी बुद्धिका अपव्यन करें! जिस जातिसे पुरानी कोई जाति इश धराधामपर मौजूद नहीं, जो हजार सालसे अधिककी घोर पराधीनता सहकर भी लुप्त नहीं हुई, जीती है, जिसकी पुरानी सभ्यता और विद्याकी आलोचना करके विद्वान और बुद्धिमान लोग आज भी मुग्ध होते हैं, जिसने सदियों इस पृथ्वीपर अखण्ड शासन करके सभ्यता और मनुषत्वका प्रचार किया—वह जाति क्या पीछे हटाने और धूलमें मिला देनेके योग्य है? आप जैसे उच्च श्रेणीके विद्वानके जीमें यह बात कैसे समाई कि भारतवासी बहुत से काम करनेके योग्य नहीं और उनको आपके सजातीय ही कर सकते हैं? आप परीक्षा करके देखिये कि भारतवासी सचमुच उन ऊंचेसे ऊंचे कामों को कर सकते हैं या नहीं, जिनको आपके सजातीय कर सकते हैं? श्रममें, बुद्धि

प, विद्यामें, काममें, वक्तृतामें, सहिष्णुतामें किसी बातमें इस देशके निवासी संसारमें किसी जातिके आदमियोंसे पीछे रहनेवाले नहीं हैं। वरंच दो-एक गुण भारतवासियों में ऐसे हैं कि संसार भरमें किसी जातिके लोग उनका अनुकरण नहीं कर सकते। हिन्दुस्थानी फारसी पढ़के ठीक फारिसवालों कि भांति बोल सकते कविता, कर सकते हैं। अंगरेजी बोलनेमें वह अंगरेजोंकी पूरी नकल कर सकते हैं, कण्ठ-तालूको अंगरेजोंके सदृश बना सकते हैं। परएक भी अंगरेज ऐसा नहीं है, जो हिन्दुस्थानियोंकी भांति साफ हिन्दी बोल सकता हो। किसी बातमें हिन्दुस्थानी पीछे रहनेवाले नहीं हैं। हां, दो बातोंमें वह अंगरेजोंकी नकल या बराबरी नहीं कर सकते हैं। एक तो अपने शरीरके काले रंगको अंगरेजों की भांति गोरा नहीं बना सकते और दूसरे अपने भाग्यको उनके भाग्यसे रगड़कर बराबर नहीं कर सकते।

किन्तु इस संसारके आरम्भमें बड़ा भारी पार्थक्य होनेपर भी अन्तमें बड़ी भारी एकता है। समय अन्तमें सबको अपने मार्गपर ले आता है। देशपति राजा और भिक्षा मांगकर पेट भरनेवाले कंगाल का परिणाम एक ही होता है। मिट्टी मिट्टीमें मिल जाती है और यह जीतेजी लुभानेवाली दुनिया यहीं रह जाती है। कितने ही शासक और कितने ही नरेश इस पृथ्वीपर हो गये, आज उनका कहीं पता-निशान नहीं है। थोड़े-थोड़े दिन अपनी-अपनी नौबत बजा चले गये। बड़ी तलाशसे इतिहासके पन्ने अथवा टूटे-फूटे खंडहरोंमें उनके दो-चार चिह्न मिल जाते हैं। माई लार्ड ! बीते हुए समय को फिर लौटा लेनेकी शक्ति किसीमें नहीं है, आपमें भी नहीं है। दूरकी बात दूर रहे, इन पिछले सौ सालहीमें कितने बड़े लाट आये और चले गये। क्या उनका समय फिर लौट सकता है ? कदापि नहीं। विचारिये तो मानों कल आप आये थे, किन्तु छः साल बीत गये। अब दूसरी बार आनेके बाद भी कितने ही दिन बीत गये तथा और बीते जाते हैं। इसी प्रकार उमरें बीत जावेंगे। युग बीत जावेंगे। समयके महासमुद्रमें मनुष्यकी आयु एक छोटीसी बूंदकी भी बराबरी नहीं कर सकती। आपमें शक्ति नहीं है कि पिछले छः वर्षों को लौटा सकें, या उनमें जो कुछ हुआ है, उसे अन्यथा कर सकें। दो साल आपके हाथमें अवश्य हैं। इनमें जो चाहें कर सकते हैं। चाहें तो इस देशकी ३० करोड़ प्रजाको अपना अनुरक्त बना सकते हैं और इस देशके

इतिहासमें अच्छे वैसरायोंमें अपना नाम छोड़ जा सकते हैं। नहीं तो यह समय भी बीत जावेगा और फिर आपका करने धरनेका अधिकार ही कुछ न रहेगा।

विक्रम, अशोक, अकबरके यह भूमि साथ नहीं गई। औरंगजेब अलाउद्दीन इसे मुट्ठी में दबा कर नहीं रख सके। महमूद, तैमूर और नादिर इसे लूटके मालके साथ ऊंटों सौर हाथियोंपर लादकर न ले जा सके। आगे भी यह किसीके साथ न जावेगी, चाहे कोई कितनी ही मजबूती क्यों न करे। इस समय भगवानने इसे एक और ही जातिके हाथमें अर्पण किया है, जिसकी बुद्धि, विद्या और प्रतापका संसारभरमें डंका बज रहा है। माइ लार्ड ! उसी जातिकी ओर से आप इस देशकी ३० करोड़ प्रजाके शासक हैं।

अब यह विचारना आपहीके जिम्मे है कि इस देशकी प्रजाके साथ आपका क्या कर्त्तव्य है। हजार सालसे यह प्रजा गिरी दशामें है। क्या आप चाहते हैं कि यह और भी सौ-पचास साल गिरती चली जावे ? इसके गिराने में बड़ेसे बड़ा इतना ही लाभ है कि कुछ संकीर्ण हृदय शासकोंकी यथेच्छा-चरिता कुछ दिन और चल सकती हैं; किन्तु इसके उठाने और सम्हालनेमें जो लाभ है, उसकी तुलना नहीं हो सकती है। इतिहासमें सदा नाम रहेगा कि अंगरेजोंने एक गिरी जातिके तीस करोड़ आदमियोंको उठाया था। माई लार्ड ! दोनोंमें जो बात पसन्द हो, वह कर सकते हैं। कहिये क्या पसन्द है ? पीछे हटाना या आगे बढ़ाना ?

('भारतमित्र', २१ जनवरी सन् १९०५)

[५]

आशाका अन्त !

माइ लार्ड ! अबके आपके भाषणने नशा किरकिरा कर दिया। संसारके सब दुःखों और समस्त चिन्ताओंको जो शिवशम्भु शर्म्मा दो चुल्लू बूटी

पीकर भूला देता था, आज उसका उस प्यारी विजयापर भी मन नहीं है। आशासे बँधा हुआ यह संसार चलता है। रोगीको रोगसे, कैदीको कैदसे, ऋणीको ऋणसे, कंगालको दरिद्रतासे, इसी प्रकार हरेक क्लेशित पुरुषको एक दिन अपने क्लेशसे मुक्त होने की आशा होती है। चाहे उसे इस जीवनमें क्लेशसे मुक्ति न मिले, पर आशाके सहारे इतना होता है कि वह धीरे-धीरे अपने क्लेशोंको झेलता हुआ एक दिन इस क्लेशमय जीवनसे तो मुक्त हो जाता है। पर हाय! जब उसकी यह आशा भी भंग हो जाय, उस समय उसके कष्टका क्या ठिकाना!—

"किस्मत पे उस मुसाफिरे खस्ताके रोइये।
जो थक गया हो बैठके मंजिलके सामने।"

बड़े लाट होकर आपके भारतमें पदार्पण करनेके समय इस देशके लोग श्रीमान्से जो-जो आशाएं करते और सुख-स्वप्न देखते थे, वह सब उड़न्छू हो गये। इस कलकत्ता महानगरीके समाचारपत्र कुछ दिन चौंक-चौंक पड़ते थे कि आज बड़ेलाट अमुक मोड़पर वेश बदले एक गरीब काले आदमीसे बातें कर रहे थे, परसों अमुक आफिसमें जाकर कामकी चक्कीमें पिसते हुए क्लर्कोंकी दशा देख रहे थे और उनसे कितनी ही बातें पूछते जाते थे। इससे हिन्दू समझने लगे कि फिरसे विक्रमादित्यका आविर्भाव हुआ या अकबरका अमल हो गया। मुसलमान खयाल करने लगे कि खलीफा हारूं रशीदका जमाना आ गया। पारसियोंने आपको नौशीरवां समझनेकी मोहलत पाई थी या नहीं, ठीक नहीं कहा जा सकता। क्योंकि श्रीमान्ने जल्द अपने कामोंसे ऐसे जल्दबाज लोगोंके कष्ट कल्पना करनेके कष्टसे मुक्त कर दिया था। वह लोग थोड़े ही दिनोंमें इस बातके समझनेके योग्य हो गये थे कि हमारा प्रधान शासक न विक्रमके रंगढंगका है, न हारूं या अकबरके, उसका रंग ही निराला है! किसीसे नहीं मिलता!

माइ लार्ड! इस देशकी दो चीजोंमें अजब तासीर है। एक यहांके जलवायुकी और दूसरे यहांके नमककी, जो उसी जलवायुसे उत्पन्न होता है। नीरससे नीरस शरीरमें यहांका जलवायु नमकीनी ला देता है। मजा यह कि उसे नमकीनीकी खबर तक नहीं होती। एक फारिसका कवि कहता है कि

हिन्दुस्थानमें एक हरी पत्ती तक बेनमक नहीं है, मानो यह देश नमकसे सींचा गया है। किन्तु शिवशम्भु शर्म्माका विचार इस कविसे भी कुछ आगे है। वह समझता है कि यह देश नमककी एक महाखानि है, इसमें जो पड़ गया, वही नमक बन गया। श्रीमान् कभी चाहें तो सांभर झीलके तटपर खड़े होकर देख सकते हैं। जो कुछ उसमें गिर जाता, वही नमक बन जाता है। यहांके जलवायुसे अलग खड़े होकर कितनोंहीने बड़ी-बड़ी अटकलें और लम्बे-चौड़े मनसूबे बांधे, पर यहांके जलवायुका असर होते ही वह सब काफूर हो गये।

अफसोस माइ लार्ड ! यहांके जलवायुकी तासीरने आपमें अपनी पिछली दशा के स्मरण रखनेकी शक्ति नहीं रहने दी। नहीं तो अपनी छ: साल पहलेकी दशासे अबकी दशाका मिलान करके चकित होते। घबराके कहते कि ऐं मैं क्या हो गया ? क्या मैं वही हूं, जो विलायत से भारत की ओर चलने से पहले था ? बम्बईमें जहाजसे उतरकर भूमि पर पांव रखते ही यहांके जलवायु का प्रभाव आपपर आरम्भ हो गया था। उसके प्रथम फलस्वरूप कलकत्तेमें पदार्पण करते ही आपने यहां के म्यूनिसिपल कार्पोरेशन की स्वाधीनता की समाप्ति की। जब वह प्रभाव कुछ और बढ़ा, तो अकालपीड़ितों की सहायता करते समय आपकी समझमें आने लगा कि इस देश के कितने ही अभागे सचमुच अभागे नहीं, वरञ्च अच्छी मजदूरीके लालच से जबरदस्ती अकालपीड़ितोंमें मिलकर दयालु सरकार को हैरान करते हैं ! इससे मजदूरी कड़ी की गई।

इसी प्रकार जब प्रभाव तेज हुआ, तो आपने अकाल की तरफ से आंखों पर पट्टी बांधकर दिल्ली-दरबार किया। अन्त को गत वर्ष आपने यह भी साफ कह दिया कि बहुतसे पद ऐसे हैं, जिनके पैदाइशी तौरसे अंगरेज ही पाने के योग्य हैं। भारतवासियों को सरकार जो देती है, वह भी उनकी हैसियत से बढ़कर है। तब इस देशके लोगों ने समझ लिया था कि अब श्रीमान्पर यहां के जलवायु का पूरा सिक्का जम गया। उसी समय आपको स्वदेश-दर्शन की लालसा हुई। लोग समझे, चलो, अच्छा हुआ, जो हो चुका, वह हो चुका, आगेको तासीरकी अधिक उन्नति से पीछा छूटा। किन्तु आप कुछ न समझे। कोरियामें जब श्रीमान्की आयु अचानक सात

साल बढ़कर चालीस हो गयी, उस समय भी श्रीमान् की समझमें आ गया था कि वहांकी सुन्दर आबहवा के प्रताप से आप चालीस सालके होने पर भी बत्तीस-तैंतीसके दिखाई देते हैं। पर इस देशकी आबहवा की तासीर आपके कुछ समझ में न आई। वह विलायतमें भी श्रीमान्‌के साथ लगी गई और जब तक वहां रहे, अपना जोर दिखाती रही। यहां तक कि फिर आपको एक बार इस देशमें उठा लाई, किसी विघ्न-बाधा की परवा न की।

माइ लार्ड ! इसका नमक यहांके जलवायुका साथ देता है; क्योंकि उसी जलवायु से उसका जन्म है। उसकी तासीर भी साथ-साथ होती रही। वह पहले विचार-बुद्धि खोता है। पीछे दया और सहृदयाताको भगाता है और उदारताको हजम कर जाता है। अन्तको आंखों पर पट्टी बांधकर, कानोंमें ठीठे ठोककर, नाकमें नकेल डालकर आदमीको जिधर-तिधर घसीटे फिरता है और उसके मुंहसे खुल्लमखुल्ला इस देशकी निन्दा कराता है। आदमीके मनमें वह यही जमा देता है कि जहांका खाना, वहाँ की खूब निन्दा करना और अपनी शेखी मारते जाना। हम लोग भी उस नमककी तासीरसे बेअसर नहीं हैं। पर हमारी हड्डियां उसीसे बनी हैं, इस कारण हमें इतना ज्ञान रहता है कि हमारे देशके नामककी क्या तासीर है। हम लोग खूब जानते थे कि यदि श्रीमान् कहीं दूसरी बार भारतमें आ गये, तो एकदम नमककी खानमें जाकर नमक हो जावेंगे। इसीसे चाहते थे कि दोबारा आप न आवें। पर हमारी पेश न गई। आप आये और आते ही उस नमककी तासीरका फल अपने कौंसिल और कानवोकेशनमें प्रकट कर डाला !

इतने दिन आप सरकारी भेदोंके जाननेसे, अच्छे पद पानेसे, उन्नतिकी बातें सोचनेसे, सुगमताके शिक्षा लाभ करनेसे, अपने स्वत्वोंके लिये पार्लमिण्ट आदिमें पुकारनेसे इस देशके लोगोंको रोकते रहे। आपकी शक्तिमें जो-कुछ था, वह करते रहे। पर उसपर भी सन्तोष न हुआ, भगवान की शक्तिपर भी हाथ चलाने लगे ! जो सत्यप्रियता इस देशको सृष्टिके आदिसे मिली है, जिस देशका ईश्वर "सत्यंज्ञान-मनन्तंब्रह्म" है, वहांके लोगोंको सभामें बुलाके ज्ञानी और विद्वानका चोला पहनकर उनके मुंहपर झूठा और

मक्कार कहने लगे। विचारिये तो यह कैसे अधःपतन की बात है? जिस स्वदेशको श्रीमान्ने आदर्श सत्यका देश और वहांके लोगोंको सत्यवादी कहा है, उसका आला नमूना क्या श्रीमान् ही हैं? यदि सचमुच विलायत वैसा ही देश हो, जैसा आप फरमाते हैं और भारत भी आपके कथनानुसार मिथ्यावादी और धूर्त्त देश हो, तो भी तो क्या कोई इस प्रकार कहता है? गिरेको ठोकर मारना क्या सज्जन और सत्यवादीका काम है? अपनी सत्यवादिता प्रकाश करनेके लिये दूसरेको मिथ्यावादी कहना ही क्या सत्यवादिताका सबूत है?

माइ लार्ड! जब आपने शासक होनेके विचारको भूलकर इस देशकी प्रजाके हृदय में चोट पहुंचाई है, तो दो-एक बातें पूछ लेनेमें शायद कुछ गुस्ताखी न होगी। सुनिये, विजित और विजेता में बड़ा अन्तर है। जो भारतवर्ष हजार सालसे विदेशीय विजेताओंके पावोंमें लोट रहा है, क्या उसकी प्रजाकी सत्यप्रियता विजेता इंग्लैण्डके लोगोंकी सत्यप्रियताका मुकाबिला कर सकती है? यह देश भी यदि विलायतकी भांति स्वाधीन होता और यहांके लोग ही यहांके राजा होते, तब यदि अपने देशके लोगोंको यहांके लोगों से अधिक सच्चा साबित कर सकते, तो आपकी अवश्य कुछ बहादुरी होती। स्मरण करिये उन दिनोंको कि जब अंगरेजोंके देशपर विदेशियोंका अधिकार था। उस समय आपके स्वदेशियों की नैतिक दशा कैसी थी, उसका विचार तो कीजिये। यह वह देश है कि हजार साल पराये पांवके नीचे रहकर भी एकदम सत्यतासे च्युत नहीं हुआ है। यदि आपका यूरोप या इंग्लैण्ड दस साल भी पराधीन हो जावे, तो आपको मालूम पड़े कि श्रीमान्के स्वदेशीय कैसे सत्यवादी और नीतिपरायण हैं। जो देश कर्म्मवादी है, वह क्या कभी असत्यवादी हो सकता है? आपके स्वदेशीय यहां बड़ी-बड़ी इमारतोंमें रहते हैं। जैसी रुचि हो, वैसे पदार्थ भोग सकते हैं। भारत आपके लिये भोग्यभूमि है। किन्तु इस देश के लाखों आदमी इसी देशमें पैदा होकर आवारा कुत्तोंकी भांति भटक-भटककर मरते हैं। उनको दो हाथ भूमि बैठनेको नहीं, पेट भरकर खानेको नहीं, मैले चिथडे पहनकर उमरें बिता देते हैं और एक दिन कहीं पड़कर चुपचाप प्राण दे देते हैं। हालकी इस सर्दी में कितनों ही के प्राण जहां-तहां निकल गये। इस प्रकार

क्लेश पाकर मरनेपर भी क्या कभी वह लोग यह कहते हैं कि पापी राजा है, इससे हमारी यह दुर्गति है ? माइ लार्ड ! वह कर्म्मवादी हैं। वह यही समझते हैं कि किसीका कुछ दोष नहीं है, सब हमारे पूर्व कर्म्मोंका दोष है ! हाय ! हाय ! ऐसी प्रजाको आप धूर्त्त कहते हैं !

कभी इस देशमें आकर आपने गरीबोंकी ओर ध्यान न दिया। कभी यहांकी दीन भूखी प्रजाकी दशाका विचार न किया। कभी दस मीठे शब्द सुनाकर यहांके लोगोंको उत्साहित नहीं किया—फिर विचारिये तो गालियां यहांके लोगोंको आपने किस कृपाके बदलेमें दीं ? पराधीनताकी सबके जीमें बड़ी भारी चोट होती है। पर महारानी विक्टोरियाके सदय बर्तावने यहांके लोगोंके जीसे वह दुःख भुला दिया था। इस देश के लोग सदा उनको माता-तुल्य समझते रहे। अब उनके पुत्र महाराजा एडवर्डपर भी इस देशके लोगोंकी वैसी ही भक्ति है। किन्तु आप उन्हीं सम्राट एडवर्डके प्रतिनिधि होकर इस देशकी प्रजाके अत्यन्त अप्रिय बने हैं, यह इस देशके बड़े ही दुर्भाग्यकी बात है ! माइ लार्ड ! इस देशकी प्रजाको आप नहीं चाहते और अब प्रजा आपको नहीं चाहती, फिर भी आप इस देशके शासक हैं और एक बार नहीं, दूसरी बार शासक हुए हैं। यही विचारकर इस अधबूढ़े भंगड़ ब्राह्मणका नशा किरकिरा हो जाता है !

('भारतमित्र', २५ फरवरी सन् १९०५)

[६]

एक दुराशा

नारंगीके रसमें जाफरानी बसन्ती बूटी छानकर शिवशम्भु शर्म्मा खटियापर पड़े मौजोंका आनन्द ले रहे थे। खयाली घोड़ेकी बागें ढीली कर दी थीं। वह मनमानी जकन्दें भर रहा था। हाथ-पांवों को भी स्वाधीनता

दी गई थी। वह खटियाके तूलअरजकी सीमा उल्लंघन करके इधर-उधर निकल गये थे। कुछ देर इसी प्रकार शर्म्माजीका शरीर खटियापर था और खयाल दूसरी दुनियामें।

अचानक एक सुरीली गानेकी आवाजने चौंका दिया। कनरसिया शिवशम्भु खटियापर उठ बैठे। कान लगाकर सुनने लगे। कानों में यह मधुर गीत बार-बार अमृत ढालने लगा—

चलो चलो आज खेलें होली, कन्हैया घर।

कमरेसे निकलकर बरामदे में खड़े हुए। मालूम हुआ कि पड़ोसमें किसी अमीरके यहां गाने-बजाने की महफिल हो रही है। कोई सुरीली लयसे उक्त होली गा रहा है। साथ ही देखा, बादल घिरे हुए हैं, बिजली चमक रही है, रिमझिम झड़ी लगी हुई है। बसन्तमें सावन देखकर अक्ल जरा चक्कर में पड़ी। विचारने लगे कि गानेवालेको मलार गाना चाहिये था, न कि होली। साथ ही खयाल आया कि फाल्गुन सुदी है, वसन्तके विकासका समय है, वह होली क्यों न गावे? इसमें तो गानेवालेकी नहीं, विधिकी भूल है, जिसने वसन्तमें सावन बना दिया है। कहां तो चांदनी छिटकी होती, निर्म्मल वायु बहती, कोयलकी कूक सुनाई देती; कहां भादोंकी-सी अँधियारी है, वर्षा की झड़ी लगी हुई है! ओह! कैसा ऋतुविपर्यय है!

इस विचारको छोड़कर गीतके अर्थका विचार जीमें आया। होली खिलैया कहते हैं कि चलो आज कन्हैयाके घर होली खेलेंगे। कन्हैया कौन? ब्रजके राजकुमार। और खेलनेवाले कौन? उनकी प्रजा ग्वालबाल। इस विचारने शिवशम्भु शर्म्माको और भी चौंका दिया कि ऐं, क्या भारतमें ऐसा समय भी था, जब प्रजाके लोग राजाके घर जाकर होली खेलते थे और राजा-प्रजा मिलकर आनन्द मनाते थे? क्या इसी भारत में राजा लोग प्रजाके आनन्दको किसी समय अपना आनन्द समझते थे? अच्छा, यदि आज शिवशम्भु शर्म्मा अपने मित्रवर्ग-सहित, अबीर-गुलालकी झोलियां भरे, रंग की पिचकारियां लिये, अपने राजाके घर होली खेलने जाये, तो कहां जाये? राजा दूर सात समुद्र पार है। राजाका केवल नाम सुना है। न राजाको शिवशम्भुने देखा, न राजा ने शिवशम्भुको। खैर राजा नहीं,

उसने अपना प्रतिनिधि भारत में भेजा है। कृष्ण द्वारिका ही में हैं, पर उद्धवको प्रतिनिधि बनाकर ब्रजवासियोंको सन्तोष देने के लिये ब्रजमें भेजा है। क्या उस राजप्रतिनिधिके घर जाकर शिवशम्भु होली नहीं खेल सकता ?

ओफ् ! यह विचार वैसा ही बेतुका है, जैसे अभी वर्षामें होली गाई जाती थी ! पर इसमें गानेवाले का क्या दोष है, वह तो समय समझकर ही गा रहा था। यदि वसन्तमें वर्षाकी झड़ी लगे, तो गानेवालेको क्या मलार गाना चाहिये ? सचमुच बड़ी कठिन समस्या है। कृष्ण है, उद्धव है; पर ब्रजवासी उनके निकट भी नहीं फटकने पाते ! राजा है, राजप्रतिनिधि है; पर प्रजाकी उन तक रसाई नहीं ! सूर्य्य है, धूप नहीं ! चन्द्र है, चांदनी नहीं ! माइ लार्ड ! नगर ही में हैं; पर शिवशम्भु उनके द्वार तक नहीं फटक सकता है, उनके घर चलकर होली खेलना तो विचार ही दूसरा है। माइ लार्डके घर तक प्रजाकी बात नहीं पहुंच सकती। बातकी हवा नहीं पहुंच सकती। जहांगीरकी भांति उसने अपने शयनागार तक ऐसा कोई घण्टा नहीं लगाया, जिसकी जंजीर बाहर से हिलाकर प्रजा अपनी फरयाद उसे सुना सके। न आगेको लगानेकी आशा है। प्रजाकी बोली वह नहीं समझता, उसकी बोली प्रजा नहीं समझती। प्रजाके मनका भाव वह न समझता है, न समझना चाहता है। उनके मनका भाव न प्रजा समझ सकती है, न समझनेका कोई उपाय है। उसका दर्शन दुर्लभ है। द्वितीयाके चन्द्रकी भांति कभी-कभी बहुत देर तक नजर गड़ानेसे उसका चन्द्रानन दिख जाता है, तो दिख जाता है। लोग उंगलियोंसे इशारे करते हैं कि वह है। किन्तु दूजके चांदके उदयका भी एक समय है। लोग उसे जान सकते हैं। माइ लार्डके मुखचन्द्रके उदयके लिये कोई समय भी नियत नहीं। अच्छा, जिस प्रकार इस देशका निवासी माइ लार्डका चन्द्रानन देखनेको टकटकी लगाये रहता हैं या जैसे शिवशम्भु शर्म्माके जीमें अपने देशके माइ लार्ड से होली खेलनेकी आई, इस प्रकार कभी माइ लार्डको भी इस देश के लोगों की सुध आती होगी ? क्या कभी श्रीमान्का जी होता होगा कि अपनी प्रजामें, जिसके दण्डमुण्डके विधाता होकर आये हैं, किसी एक आदमीसे मिलकर उसके मनकी बात पूछें या कुछ आमोद-प्रमोदकी बातें

करके उसके मनको टटोलें ? माइ लार्डको ड्यूटीका ध्यान दिलाना सूर्य्य को दीपक दिखाना है। वह स्वयं श्रीमुखसे कह चुके हैं कि ड्यूटी में बंधा हुआ मैं इस देशमें फिर आया। यह देश मुझे बहुत ही प्यारा है। इससे ड्यूटी और प्यारकी बात श्रीमान्‌के कथनसे ही तय हो जाती है। उसमें किसी प्रकारकी हुज्जत उठानेकी जरूरत नहीं। तथापि यह प्रश्न आपसे आप जीमें उठाता है कि इस देशकी प्रजासे प्रजाके माइ लार्डका निकट होना और प्रजाके लोगोंकी बात जानना भी उस ड्यूटीकी सीमा तक पहुंचा है या नहीं ? यदि पहुंचा है, तो क्या श्रीमान् बता सकते हैं कि अपने छः सालके लम्बे शासनमें इस देशकी प्रजाको क्या जाना और उससे क्या सम्बन्ध उत्पन्न किया ? जो पहरेदार सिरपर फैंटा बांधे, हाथमें संगीन-दार बन्दूक लिये, काठ के पुतलोंकी भांति गवर्नमेण्ट-हाउसके द्वारपर दण्डायमान रहते हैं या छायाकी मूर्त्तिकी भांति ज़रा इधर-उधर हिलते-जुलते दिखाई देते हैं, कभी उनको भूले-भटके आपने पूछा है कि कैसी गुजरती है ? किसी काले प्यादे-चपरासी या खानसामा आदिसे कभी आपने पूछा कि कैसे रहते हो ? तुम्हारे देशकी क्या चाल-ढाल है ? तुम्हारे देश के लोग हमारे देशको कैसा समझते हैं ? क्या इन नीचे दरजेके नौकर-चाकरोंको कभी माइ लार्डके श्रीमुखसे निकले हुए अमृतरूपी वचनोंके सुननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ या खाली पेड़ोंपर बैठी चिड़ियोंका शब्द ही उनके कानों तक पहुंचकर रह गया ? क्या कभी सैर-तमाशेमें टहलने के समय या किसी एकान्त स्थानमें इस देशके किसी आदमीसे कुछ बातें करने का अवसर मिला ? अथवा इस देशके प्रतिष्ठित वेगरज आदमीको अपने घर पर बुलाकर इस देशके लोगोंके सच्चे विचार जाननेकी चेष्टा की ? अथवा कभी विदेश या रियासतोंके दौरेमें उन लोगों के सिवा जो झुक-झुककर लम्बी सलामें करने आये हों, किसी सच्चे और बेपरवा आदमी से कुछ पूछने या कहनेका कष्ट किया। सुनते हैं कि कलकत्तेमें श्रीमान्‌ने कोना-कोना देख डाला। भारतमें क्या भीतर और क्या सीमाओंपर कोई जगह देखे बिना नहीं छोड़ी। बहुतोंका ऐसा ही विचार था। पर कलकत्ता-यूनिवर्सिटीके परीक्षोत्तीर्ण छात्रोंकी सभामें चन्सलरका जामा पहनकर माइ लार्डने जो अभिज्ञता प्रगट की, उससे स्पष्ट हो गया कि जिन आंखों

से श्रीमान्‌ने देखा, उनमें इस देशकी बातें ठीक देखनेकी शक्ति न थी।

सारे भारतकी बात जाय, इस कलकत्ते ही में देखनेकी इतनी बातें हैं कि केवल उनको भलीभांति देख लेनेसे भारतवर्षकी बहुत-सी बातोंका ज्ञान हो सकता है। माइ लार्डके शासनके छः साल हालवेलके स्मारकमें लाठ बनवाने, ब्लैकहोलका पता लगाने, अखतरलौनीकी लाठ को मैदानसे उठवाकर वहां विक्टोरिया-मेमोरियल हाल बनवाने, गवर्नमेन्ट-हाउसके आसपास अच्छी रोशनी, अच्चे फुटपाथ और अच्छी सड़कोंका प्रबन्ध कराने में बीत गये। दूसरा दौरा भी वैसे ही कामों में बीत रहा है। सम्भव है कि उसमें भी श्रीमान्‌के दिलपसन्द अंगरेजी मुहल्लोंमें कुछ और बड़ी-बड़ी सड़कें निकल जायें और गवर्नमेण्ट हाऊसकी तरफके स्वर्गकी सीमा और बढ़ जावे। पर नगर जैसा अंधेरेमें था, वैसा ही रहा; क्योंकि उसकी असली दशा देखनेके लिए और ही प्रकारकी आंखोंकी जरूरत है। जब तक वह आंखें न होंगी, यह अंधेर योंही चला जावेगा। यदि किसी दिन शिवशम्भु शर्म्माके साथ माई लार्ड नगरकी दशा देखने चलते, तो वह देखते कि इस महानगरकी लाखों प्रजा भेड़ों और सूअरोंकी भांति सड़े-गंदे झोंपड़ोंमें पड़ी लोटती है। उनके आसपास सड़ी बदबू और मैले सड़े पानीके नाले बहते हैं। कीचड़ और कूड़ेके ढेर चारों ओर लगे हुए हैं। उनके शरीरोंपर मैले-कुचैले फटे चिथड़े लिपटे हुए हैं। उनमें से बहुतोंको आजीवन पेटभर अन्न और शरीर ढाँकनेको कपड़ा नहीं मिलता। जाड़ोंमें सर्दीसे अकड़कर रह जाते हैं। और गर्मीमें सड़कोंपर घूमते तथा जहां-तहां पड़ते फिरते हैं। बरसात में सड़े-सीले घरोंमें भीगे पड़े रहते हैं। सारांश यह है कि हरेक ऋतुकी तीव्रतामें सबसे आगे मृत्युके पथका वही अनुगमन करते हैं। मौत ही एक है, जो उनकी दशापर दया करके जल्द-जल्द उन्हें जीवनरूपी रोगके कष्ट से छुड़ाती है!

परन्तु क्या इनसे भी बढ़कर और दृश्य नहीं हैं? हां, हैं। पर जरा और स्थिरतासे देखनेके हैं। बालूमें बिखरी हुई चीनीको हाथी अपने सूंड़से नहीं उठा सकता, उसके लिये चिंवटीकी जिह्वा दरकार है। इसी कलकत्तेमें, इसी इमारतोंके नगरमें, माइ लार्डकी प्रजामें हजारों आदमी ऐसे हैं, जिनको रहनेको सड़ा झोंपड़ा भी नहीं है। गलियों और सड़कोंपर घूमते-घूमते जहां

जगह देखते हैं, वहीं पड़ रहते हैं। बीमार होते हैं, तो सड़कों ही पर पड़े पांव पीटकर मर जाते हैं। कभी आग जलाकर खुले मैदानमें पड़े रहते हैं। कभी-कभी हलवाइयोंकी भट्टियोंसे चमटकर रात काट देते हैं। नित्य इनकी दो-चार लाशें जहाँ-तहांसे पड़ी हुई पुलिस उठाती है। भला माइ लार्ड तक उनकी बात कौन पहुंचावे? दिल्ली-दरबारमें भी, जहां सारे भारत का वैभव एकत्र था, सैंकड़ों ऐसे लोग दिल्लीकी सड़कोंपर पड़े दिखाई देते थे; परन्तु उनकी ओर देखनेवाला कोई न था। यदि माइ लार्ड एक बार इन लोगोंको देख पाते, तो पूछनेको जगह हो जाती कि वह लोग भी ब्रिटिश राज्यके सिटीजन हैं वा नहीं? यदि हैं, तो कृपापूर्वक पता लगाइये कि उनके रहनेके स्थान कहां हैं और ब्रिटिश राज्यसे उनका क्या नाता है? क्या कहकर वह अपने राजा और उसके प्रतिनिधिको सम्बोधन करें? किन शब्दोंमें ब्रिटिश राज्यको असीस दें? क्या यों कहें कि जिस ब्रिटिश राज्यमें हम अपनी जन्मभूमिमें एक उंगल भूमिके अधिकारी नहीं, जिसमें हमारे शरीरको फटे चिथड़े भी नहीं जुड़े और न कभी पापी पेटको पूरा अन्न मिला, उस राज्यकी जय हो! उसका राजप्रतिनिधि हाथियोंका जुलूस निकालकर, सबसे बड़े हाथीपर चंवर-छत्र लगाकर निकले और स्वदेशमें जाकर प्रजाके सुखी होनेका डङ्का बजावे?

इस देशमें करोड़ों प्रजा ऐसी है, जिसके लोग जब संध्या-सबेरे किसी स्थानपर एकत्र होते हैं, तो महाराज विक्रमकी चर्चा करते हैं और उन राजा-महाराजाओंकी गुणावलीका वर्णन करते हैं, जो प्रजा का दुःख मिटाने और उनके अभावोंका पता लगानेके लिये रातको वेश बदलकर निकला करते थे। अकबरके प्रजापालन और बीरबलके लोकरञ्जनकी कहानियां कहकर वह जी बहलाते हैं और समझते हैं कि न्याय और सुखका समय बीत गया। अब वह राजा संसारमें उत्पन्न नहीं होते, जो प्रजाके सुख-दुःख की बातें उनके घरोंमें आकर पूछ जाते थे। महारानी विक्टोरियाको वह अवश्य जानते हैं कि वह महारानी थीं। अब उनके पुत्र उनकी जगह राजा और इस देश के प्रभु हुए हैं। उनको इस बात की खबर तक भी नहीं कि उनके प्रभुके कोई प्रतिनिधि हैं और वह इस देशके शासनके मालिक होते हैं तथा कभी-कभी इस देश की तीस करोड़ प्रजाका शासन करनेका घमण्ड भी

करते हैं। अथवा मन चाहे तो इस देशके साथ बिना कोई अच्छा बर्ताव किये भी यहांके लोगोंको झूठा, मक्कार कहकर अपनी बड़ाई करते हैं।

इन सब विचारोंने इतनी बात तो शिवशम्भुके जीमें भी पक्की कर दी कि अब राजा-प्रजाके मिलकर होली खेलनेका समय गया। जो बाकी था, वह काश्मीर-नरेश महाराज रणवीरसिंहके साथ समाप्त हो गया। इस देश में उस समयके फिर लौटने की जल्द आशा नहीं। इस देशकी प्रजाका अब वह भाग्य नहीं है। साथ ही राजपुरुष का भी ऐसा सौभाग्य नहीं है, जो यहां की प्रजाके अकिंचन प्रेमके प्राप्त करनेकी परवा करे। माइ लार्ड अपने शासन कालका सुन्दरसे सुन्दर सचित्र इतिहास स्वयं लिखवा सकते हैं, वह प्रजाके प्रेमकी क्या परवा करेंगे। तो भी इतना संदेश भंगड़ शिवशम्भु शर्म्मा अपने प्रभु तक पहुंचा देना चाहता है कि आपके द्वारपर होली खेलने-की आशा करनेवाले एक ब्राह्मणको कुछ नहीं तो कभी-कभी पागल समझकर ही स्मरण कर लेना। वह आपकी गूंगी प्रजाका एक वकील है, जिसके शिक्षित होकर मुंह खोलनें तक आप कुछ करना नहीं चाहते।

बमुलाजिमाने सुलतां कै रसानद, ईं दुआरा ?
कि बशुक्रे बादशाही जे नजर मरां गदारा।

('भारतमित्र', १८ मार्च सन् १९०५)

[७]

बिदाई-सम्भाषण

माइ लार्ड ! अन्तको आपके शासन-कालका इस देशमें अन्त हो गया। अब आप इस देशसे अलग होते हैं। इस संसारमें सब बातोंका अन्त हैं। इससे आपके शासन-कालका भी अन्त होता, चाहे आपकी एक बारकी कल्पनाके अनुसार आप यहांके चिरस्थायी वाइसराय भी हो जाते। किन्तु

इतनी जल्दी वह समय पूरा हो जायगा, ऐसा विचार न आप ही का था, न इस देशके निवासियोंका। इससे जान पड़ता है कि आपके और यहाँके निवासियोंके बीचमें कोई तीसरी शक्ति और भी है, जिसपर यहांवालोंका तो क्या, आपका भी काबू नहीं है।

बिछड़न-समय बड़ा करुणोत्पादक होता है। आपको बिछड़ते देखकर आज हृदय में बड़ा दुःख है। माइ लार्ड ! आपके दूसरी बार इस देश में आने से भारतवासी किसी प्रकार प्रसन्न न थे। वह यही चाहते थे कि आप फिर न आवें। पर आप आये और उससे यहांके लोग बहुत ही दुःखित हुए। वह दिन-रात यही मानते थे कि जल्द श्रीमान् यहां से पधारें। पर अहो ! आज आपके जानेपर हर्षकी जगह विषाद होता है। इसीसे जाना कि बिछड़न-समय बड़ा करुणोत्पादक होता है; बड़ा पवित्र, बड़ा निर्म्मल और बड़ा कोमल होता है। वैर-भाव छूटकर शान्त रसका आविर्भाव उस समय होता है।

माइ लार्डका देश देखनेका इस दीन भंगड़ ब्राह्मणको कभी इस जन्ममें सौभाग्य नहीं हुआ। इससे नहीं जानता कि वहां बिछड़नेके समय लोगोंका क्या भाव होता है। पर इस देशके पशु-पक्षियोंको भी बिछड़नेके समय उदास देखा है। एक बार शिवशम्भुके दो गायें थीं। उनमें एक अधिक बलवाली थी। वह कभी-कभी अपने सींगोंकी टक्करसे दूसरी कमजोर गायको गिरा देती थी। एक दिन वह टक्कर मारनेवाली गाय पुरोहितको दे दी गई। देखा कि दुर्बल गाय उसके चले जानेसे प्रसन्न नहीं हुई, वरञ्च उस दिन वह भूखी खड़ी रही, चारा छुआ तक नहीं। माइ लार्ड ! जिस देशके पशुओंकी बिछड़ते समय यह दशा होती है, वहां मनुष्योंकी कैसी दशा हो सकती है, इसका अन्दाजा लगाना कठिन नहीं है।

आगे भी इस देशमें जो प्रधान शासक आये, अन्तको उनको जाना पड़ा। इससे आपका जाना भी परम्पराकी चालसे कुछ अलग नहीं है, तथापि आपके शासन-कालका नाटक घोर दुःखान्त है, और अधिक आश्चर्यकी बात यह है कि दर्शक तो क्या, स्वयं सूत्राधार भी नहीं जानता था कि उसने जो खेल सुखान्त समझकर खेलना आरम्भ किया था, वह दुःखान्त हो जावेगा। जिसके आदिमें सुख था, मध्यमें सीमासे बाहर सुख था, उसका अन्त ऐसे

घोर दुःखके साथ कैसे हुआ ! आह ! घमण्डी खिलाड़ी समझता है कि दूसरोंको अपनी लीला दिखाता हूं । किन्तु परदेके पीछे एक और ही लीलामयकी लीला हो रही है, यह उसे खबर नहीं !

एक बार बम्बईमें उतरकर, माइ लार्ड ! आपने जो इरादे जाहिर किये थे, ज़रा देखिये तो उनमें से कौन-कौन पूरे हुए ? आपने कहा था कि यहांसे जाते समय भारतवर्षको ऐसा कर जाऊंगा कि मेरे बाद आनेवाले बड़े लाटोंको वर्षों तक कुछ करना न पड़ेगा, वह कितने ही वर्षों सुखकी नींद सोते रहेंगे । किन्तु बात उलटी हुई । आपको स्वयं इस बार बेचैनी उठानी पड़ी है और इस देशमें जैसी अशान्ति आप फैला चले हैं, उसके मिटानेमें आपके पदपर आनेवालोंको न जाने कब तक नींद और भूख हराम करना पड़ेगा । इस बार आपने अपना बिस्तरा गर्म राखपर रखा है और भारतवासियोंको गर्म तवे पर पानीकी बूंदोंकी भांति नचाया है । आप स्वयं भी खुशी न हो सके और यहांकी प्रजाको सुखी न होने दिया, इसका लोगोंके चित्तपर बड़ा ही दुःख है ।

विचारिये तो क्या शान आपकी इस देश में थी और अब क्या हो गई ! कितने ऊंचे होकर आप कितने नीचे गिरे ! अलिफलैलाके अलहदीनने चिराग रगड़कर और अबुलहसनने बगदादके खलीफाकी गद्दीपर आंख खोलकर वह शान न देखी, जो दिल्ली-दरबारमें आपने देखी । आपकी और आपकी लेडीकी कुरसी सोनेकी थी और आपके प्रभु महाराजके छोटे भाई और उनकी पत्नीकी चांदीकी । आप दहने थे, वह बायें; आप प्रथम थे, वह दूसरे । इस देशके सब राजा-रईसोंने आपको सलाम पहले किया और बादशाहके भाईको पीछे । जुलूसमें में आपका हाथी सबसे आगे और सबसे ऊँचा था, हौदा-चंवर-छत्र आदि सबसे बढ़-चढ़कर थे । सारांश यह कि ईश्वर और महाराज एडवर्डके बाद इस देशमें आप ही का दरजा था । किन्तु अब देखते हैं कि जंगी-लाटके मुकाबिलेमें आपने पटखनी खाई, सिर के बल नीचे आ रहे ! आपके स्वदेशमें वही ऊंचे माने गये, आपको साफ नीचा देखना पड़ा । पदत्यागकी धमकीसे भी ऊंचे न हो सके !

आप बहुत धीर-गम्भीर प्रसिद्ध थे । उस सारी धीरता-गम्भीरताका आपने इस बार कौंसिलमें बेकानूनी कानून पास करते और कनवोकेशनमें

वक्तृता देते समय दिवाला निकाल दिया। यह दिवाला तो इस देशमें हुआ। उधर विलायतमें आपके बार-बार इस्तीफा देने की धमकीने प्रकाश कर दिया कि जड़ हिल गई है। अन्तमें वहां भी आपको दिवालिया होना पड़ा और धीरता-गम्भीरताके साथ दृढ़ताको भी जलांजलि देना पड़ी। इस देशके हाकिम आपकी तालपर नाचते थे, राजा-महाराजा डोरी हिलानेसे सामने हाथ बांधे हाजिर होते थे। आपके एक इशारेमें प्रलय होती थी। कितने ही राजोंको मट्टीके खिलौनेकी भांति आपने तोड़-फोड़ डाला। कितने ही मट्टी-काठके खिलौने आपकी कृपाके जादूसे बड़े-बड़े पदाधिकारी बन गये। आपके एक इशारेमें इस देशकी शिक्षा पायमाल हो गई, स्वाधीनता उड़ गई। बंगदेशके सिरपर आरह रखा गया। ओह! इतने बड़े माइ लार्डका यह दरजा हुआ कि एक फौजी अफसर उनके इच्छित पदपर नियत न हो सका! और उनको उसी गुस्सेके मारे इस्तीफा दाखिल करना पड़ा, वह भी मंजूर हो गया! उनका रखाया एक आदमी नौकर न रखा गया, उल्टा उन्हींको निकल जानेका हुक्म मिला!

जिस प्रकार आपका बहुत ऊचे चढ़कर गिरना यहांके निवासियों को दुःखिद कर रहा है, गिरकर पड़ा रहना उससे भी अधिक दुःखित करता है। आपका पद छूट गया, तथापि आपका पीछा नहीं छूटा है। एक अदना क्लर्क, जिसे नौकरी छोड़नेके लिये एक महीनेका नोटिस मिल गया हो, नोटिसकी अवधिको बड़ी घृणासे काटता है। आपको इस समय अपने पदपर रहना कहां तक पसन्द है, यह आप ही जानते होंगे। अपनी दशापर आपको कैसी घृणा आती है, इस बात के जान लेनेका इस देशके वासियोंको अवसर नहीं मिला; पर पतन के पीछे इतनी उलझनमें पड़ते उन्होंने किसीको नहीं देखा।

माइ लार्ड! एक बार अपने कामोंकी ओर ध्यान दीजिये, आप किस कामको आये थे और क्या कर चले। शासकका प्रजाके प्रति कुछ तो कर्त्तव्य होता है, यह बात आप निश्चित मानते होंगे। सो कृपा करके बतलाइये, क्या कर्त्तव्य आप इस देशकी प्रजाके साथ पालन कर चले? क्या आंख बन्द करके मनमाने हुक्म चलाना और किसी की कुछ न सुननेका नाम ही शासन है? क्या प्रजाकी बातपर कभी कान न देना और उसको दबाकर उसकी

मर्जीके विरुद्ध जिद्दसे सब काम किये चले जाना ही शासन कहलाता है ? एक काम तो ऐसा बतलाइये, जिसमें आपने जिद्द छोड़कर प्रजाकी बातपर ध्यान दिया हो। कैसर और ज़ार भी घेरने-घसीटनेसे प्रजाकी बात सुन लेते हैं; पर आप एक मौका तो ऐसा बतलाइये, जिसमें किसी अनुरोध या प्रार्थना सुननेके लिये प्रजाके लोगोंको आपने अपने निकट फटकने दिया हो और उनकी बात सुनी हो। नादिरशाहने जब दिल्लीमें कतलेआम किया, तो आसिफजाहके तलवार गलेमें डालकर प्रार्थना करनेपर उसने कतलेआम उसी दम रोक दिया। पर आठ करोड़ प्रजाके गिड़गिड़ा कर वंग-विच्छेद न करनेकी प्रार्थनापर अपने ज़रा भी ध्यान नहीं दिया ! इस समय आपकी शासन-अवधि पूरी हो गई है, तथापि वंग-विच्छेद किये बिना घर जाना आपको पसन्द नहीं है ! नादिरसे भी बढ़कर आपकी जिद्द है। क्या आप समझते हैं कि आपकी जिद्द से प्रजाके जीमें दुःख नहीं होता ? आप विचारिये तो एक आदमी को आपके कहनेपर पद न देनेपर आप नौकरी छोड़े जाते हैं, इस देश की प्रजाको भी यदि कहीं जानेको जगह होती, तो क्या वह नाराज होकर इस देशको छोड़ न जाती ?

यहां की प्रजाने आपकी जिद्दका फल यहीं देख लिया। उसने देख लिया कि आपकी जिस जिद्दने इस देशकी प्रजाको पीड़ित किया, आपको भी उसने कम पीड़ा न दी, यहां तक कि आप स्वयं उसका शिकार हुए। यहांकी प्रजा वह प्रजा है, जो अपने दुःख और कष्टों की अपेक्षा परिणामका अधिक ध्यान रखती है। वह जानती है कि संसारमें सब चीजोंका अन्त है। दुःखका समय भी एक दिन निकल जावेगा। इसीसे सब दुःखोंको झेलकर, पराधीनता सहकर भी वह जीती है। माइ लार्ड ! इस कृतज्ञताकी भूमिकी महिमा आपने कुछ न समझी और न यहांकी दीन प्रजाकी श्रद्धा-भक्ति अपने साथ ले जा सके, इसका बड़ा दुःख है !

इस देशके शिक्षितोंको तो देखनेकी आपकी आंखोंको ताव नहीं। अनपढ़-गूंगी प्रजाका नाम कभी-कभी आपके मुंहसे निकल जाया करता है। उसी अनपढ़ प्रजामें नर सुलतान नामके एक राजकुमारका गीत गाया जाता है। एक बार अपनी विपदके कई साल सुलतानने नरवरगढ़ नामके एक स्थानमें काटे थे। वहां चौकीदारीसे लेकर उसे एक ऊंचे पद तक काम करना

पड़ा था। जिस दिन घोड़ेपर सवार होकर वह उस नगरसे बिदा हुआ, नगर-द्वारसे बाहर आकर उस नगरको जिस रीतिसे उसने अभिवादन किया था, वह सुनिये। उसने आंखोंमें आंसू भरकर कहा—"प्यारे नरवरगढ़! मेरा प्रणाम ले। आज मैं तुझसे जुदा होता हूं। तू मेरा अन्नदाता है। अपनी विपदके दिन मैंने तुझमें काटे हैं। तेरे ऋणका बदला मैं गरीब सिपाही नहीं दे सकता। भाई नरवरगढ़! यदि मैंने जान-बूझकर एक दिन भी अपनी सेवामें चूक की हो, यहांकी प्रजाकी शुभचिन्ता न की हो, यहांकी स्त्रियोंको माता और बहनकी दृष्टिसे न देखा हो, तो मेरा प्रणाम न ले, नहीं तो प्रसन्न होकर एक बार मेरा प्रणाम ले और मुझे जानेकी आज्ञा दे!" माइ लार्ड! जिस प्रजामें ऐसे राजकुमारका गीत गाया जाता है, उसके देशसे क्या आप भी चलते समय कुछ सम्भाषण करेंगे? क्या आप कह सकेंगे—"अभागे भारत! मैंने तुझसे सब प्रकारका लाभ उठाया और तेरी बदौलत वह शान देखी जो, इस जीवनमें असम्भव है। तूने मेरा कुछ नहीं बिगाड़ा; पर मैंने तेरे बिगाड़नेमें कुछ कमी न की। संसारके सबसे पुराने देश! जब तक मेरे हाथमें शक्ति थी, तेरी भलाईकी इच्छा मेरे जीमें न थी। अब कुछ शक्ति नहीं है, जो तेरे लिये कुछ कर सकूं। पर आशीर्वाद करता हूं कि तू फिर उठे और अपने प्राचीन गौरव और यशको फिरसे लाभ करे। मेरे बाद आनेवाले तेरे गौरवको समझें।" आप कर सकते हैं और यह देश आपकी पिछली सब बातें भूल सकता है, पर इतनी उदारता माइ लार्डमें कहां?

('भारतमित्र', २ सितम्बर सन् १९०५)

[८]

वंग-विच्छेद

गत १६ अक्टोबरको वंग-विच्छेद या बंगालका पार्टीशन हो गया। पूर्व बंगाल और आसामका नया प्रान्त बनकर हमारे महाप्रभु माइ लार्ड

इंगलैण्डके महान् राजप्रतिनिधिका तुगलकाबाद आबाद हो गया। भंगड़ लोगोंके पिछले रगड़ेकी भांति यही माइ लार्डकी सबसे पिछली प्यारी इच्छा थी। खूब अच्छी तरह भंग घुटकर तैयार हो जानेपर भंगड़ आनन्दसे उसपर एक और रगड़ लगाता है। भंगड़-जीवनमें उससे बढ़कर और कुछ आनन्द नहीं होता। माइ लार्डके भारत-शासन-जीवनमें भी इससे अधिक आनन्दकी बात कदाचित् कोई न होगी, जिसे पूरी होते देखनेके लिये आप इस देशका सम्बन्ध-जाल छिन कर डालनेपर भी उसमें अटके रहे।

माइ लार्डको इस देशमें जो कुछ करना था, वह पूरा कर चुके थे। यहां तक कि अपने सब इरादोंको पूरा करते-करते अपने शासन-कालकी इतिश्री भी अपने ही कर-कमलसे कर चुके थे। जो कुछ करना बाकी था, वह यही वंग-विच्छेद था। वह भी हो गया। आप अपनी अन्तिम कीर्तिकी ध्वजा अपने ही हाथोंसे उड़ा चले और अपनी आंखोंको उसके प्रियदर्शनसे सुखी कर चले, यह बड़े सौभाग्यकी बात है। अपने शासन-कालकी रकाबीमें बहुत-सी कड़वी-कसैली चीजें चख जानेपर भी आप अपने लिये 'मधुरेण समापयेत' कर चले, यही गनीमत है।

अब कुछ करना रह भी गया हो, तो उसके पूरा करनेकी शक्ति माइ लार्डमें नहीं है। आपके हाथोंसे इस देशका जो बुरा-भला होना था, वह हो चुका। एक ही तीर आपके तर्कशमें और बाकी था, उससे आप वंगभूमिका वक्षस्थल छेद चले! बस, यहां आकर आपकी शक्ति समाप्त हो गई! इस देशकी भलाईकी ओर तो आपने उस समय भी दृष्टि न की, जब कुछ भला करनेकी शक्ति आपमें थी। पर अब कुछ बुराई करनेकी शक्ति भी आपमें नहीं रही, इससे यहांके लोगोंको बहुत ढारस मिली है। अब आप हमारा कुछ नहीं कर सकते।

आपके शासन-कालमें वंग-विच्छेद इस देशके लिये अन्तिम विषाद और आपके लिये अन्तिम हर्ष है। इस प्रकारके विषाद और हर्ष इस पृथ्वीके सबसे पुराने देशकी प्रजाके बारम्बार देखे हैं। महाभारतमें सबका संहार हो जाने-पर भी घायल पड़े हुए दुर्म्मद दुर्योधनको अश्वत्थामाकी यह वाणी सुनकर अपार हर्ष हुआ था कि मैं पांचों पाण्डवों के सिर काटकर आपके पास लाया हूं। उसी प्रकार लेना-सुधार-रूपी महाभारतमें जंगी-लाट किचनर-रूपी

भीमकी विजय-गदासे जर्जरित होकर पदच्युति हृदमें पड़े इस देशके माइ लार्डको इस खबरने बड़ा हर्ष पहुंचाया कि अपने हाथोंसे श्रीमान्‌को वंग-विच्छेदका अवसर मिला। इसी महाहर्षको लेकर माइ लार्ड इस देशसे बिदा होते हैं, यह बड़े सन्तोषकी बात है। अपनोंसे लड़कर श्रीमान्‌की इज्जत गई या श्रीमान् ही गये, उसका कुछ खयाल नहीं है। भारतीय प्रजाके सामने आपकी इज्जत बनी रही, यही बड़ी बात है। इसके सहारे स्वदेश तक श्रीमान् मोछोंपर ताव देते चले जा सकते हैं।

श्रीमान्‌के खयालके शासक इस देशने कई बार देखे हैं। पांच सौसे अधिक वर्ष हुए तुगलक-वंशके एक बादशाहने दिल्लीको उजाड़ दौलताबाद बसाया था। पहले उसने दिल्ली की प्रजा को हुक्म दिया कि दौलताबादमें जाकर बसो। जब प्रजा बड़े कष्टसे दिल्लीको छोड़कर वहां जाकर बसी, तो उसे फिर दिल्लीको लौट आनेका हुक्म दिया। इस प्रकार दो-तीन बार प्रजाको दिल्ली से देवगिरि और देवगिरिसे दिल्ली अर्थात् श्रीमान् मुहम्मद तुगलकके दौलताबाद और अपने वतनके बीचमें चकराना और तबाह होना पड़ा। हमारे इस समयके माइ लार्डने केवल इतना ही किया है कि बंगालके कुछ जिले आसाममें मिलाकर एक नया प्रान्त बना दिया है। कलकत्तेकी प्रजाको कलकत्ता छोड़कर चटगांवमें आबाद होनेका हुक्म तो नहीं दिया! जो प्रजा तुगलक-जैसे शासकोंका खयाल बर्दाश्त कर गई, वह क्या आजकलके माइ लार्डके एक खयालको बर्दाश्त नहीं कर सकती है?

सब ज्योंका त्यों है। बंगदेशकी भूमि जहां थी, वहीं है, और उसका हरेक नगर और गांव जहां था, वहीं है। कलकत्ता उठकर चीरापूंजीके पहाड़पर नहीं रख दिया गया और शिलांग उड़कर हुगली के पुल पर नहीं आ बैठा। पूर्व और पश्चिम बंगालके बीचमें कोई नहर नहीं खुद गई और दोनोंको अलग-अलग करने के लिये बीच में कोई चीनकी-सी दीवार नहीं बन गई है। पूर्व बंगाल पश्चिम बंगालसे अलग हो जानेपर भी अंगरेजी शासन ही में बना हुआ है और पश्चिमी बंगाल भी पहलेकी भाँति उसी शासनमें है। किसी बातमें कुछ फर्क नहीं पड़ा। खाली खयाली लड़ाई है। वंगविच्छेद करके माइ लार्डने अपना एक खयाल पूरा किया है। इस्तीफा देकर भी एक खयाल ही पूरा किया और इस्तीफा मंजूर हो जानेपर इस

देशमें पड़े रहकर भी श्रीमान्का प्रिन्स आफ वेल्सके स्वागत तक ठहरना एक खयाल-मात्र है।

कितने ही खयाली इस देशमें अपना खयाल पूरा करके चले गये। दो सवा-दो सौ साल पहले एक शासकने इस बंगदेशमें एक रुपयेके आठ मन धान बिकवाकर कहा था कि जो इससे सस्ता धान इस देशमें बिकवाकर इस देशके धनधान्यपूर्ण होनेका परिचय देगा, उसको मैं अपने से अच्छा शासक समझूंगा। यह शासक भी नहीं है, उसका समय भी नहीं है। कईएक शताब्दियोंके भीतर इस भूमिने कितने ही रंग पलटे हैं, कितनी ही इसकी सीमाएं हो चुकी हैं। कितने ही नगर इसकी राजधानी बनकर उजड़ गये। गौड़ के जिन खण्डहरोंमें अब उल्लू बोलते और गीदड़ चिल्लाते हैं, वहां कभी बांके महल खड़े थे और वहीं बंगदेशका शासक रहता था। मुर्शिदाबाद, जो आज एक लुटा हुआ-सा शहर दिखाई देता है, कुछ दिन पहले इसी बंगदेशकी राजधानी था और उसकी चहल-पहलका कुछ ठिकाना न था। जहां घसियारे घास खोदा करते थे, वहां आज कलकत्ता-जैसा महानगर बसा हुआ है, जिसके जोड़का एशियामें एक-आध नगर ही निकल सकता है। अब माइ लार्डके बंग-विच्छेदसे ढाका, शिलांग और चटगांवमें से हरेक राजधानीका सेहरा बंधवाने के लिये सिर आगे बढ़ाता है। कौन जाने इनमें से किसके नसीबमें क्या लिखा है और भविष्य क्या-क्या दिखलायेगा!

दो हजार वर्ष नहीं हुए, इस देशका एक शासक कह गया है—"सैकड़ों राजा जिसे अपनी-अपनी समझकर चले गये, परन्तु वह किसीके भी साथ नहीं गई, ऐसी पृथिवीके पानेसे क्या राजाओं को अभिमान करना चाहिये? अब तो लोग इसके अंशके अंशको पाकर भी अपने को भूपति मानते हैं। ओहो! जिसपर पश्चाताप करना चाहिये, उसके लिये मूर्ख उल्टा आनन्द करते हैं।" वही राजा और कहता है—"यह पृथिवी मट्टीका एक छोटा-सा ढेला है, जो चारों तरफसे समुद्ररूपी पानीकी रेखासे घिरा हुआ है। राजा लोग आपसमें लड़-भिड़कर इस छोटे-से ढेलेके छोटे-छोटे अंशोंपर अपना अधिकार जमाकर राज्य करते हैं। ऐसे क्षुद्र और दरिद्री राजाओंको लोग दानी कहकर जाँचने जाते हैं। ऐसे नीचोंसे धनकी आशा करनेवाले अधम पुरुषोंको धिक्कार है।" यह वह शासक था कि इस देशका चक्रवर्त्ती अधीश्वर होनेपर भी एक दिन राज-पाटको लात मारकर जंगलों और वनों में चला

गया था। आज वही भारत एक ऐसे शासकका शासन-काल देख रहा है, जो यहांका अधीश्वर नहीं है; कुछ नियत समयके लिए उसके हाथमें यहां का शासन-भार दिया गया था, तो भी इतना मोहमें डूबा हुआ है कि स्वयं इस देशको त्यागकर भी इसे कुछ दिन और न त्यागनेका लोभ सवंरण न कर सका !

यह वंग-विच्छेद बंगका विच्छेद नहीं है। बंग-निवासी इससे विच्छिन्न नहीं हुए, वरञ्च और युक्त हो गये। जिन्होंने गत १६ अक्टूबरका दृश्य देखा है, वह समझ सकते हैं कि बंगदेश या भारतवर्षमें नहीं, पृथ्वी-भरमें वह अपूर्व दृश्य था। आर्य्य-सन्तान उस दिन अपने प्राचीन वेशमें विचरण करती थी। वंगभूमि ऋषि-मुनियोंके समयकी आर्यभूमि बनी हुई थी। किसी अपूर्व शक्तिने उसको उस दिन एक राखीसे बांध दिया था। बहुत कालके पश्चात् भारत-सन्तानको होश हुआ कि भारतकी मट्टी बन्दनाके योग्य है। इसीसे वह एक स्वरसे "वन्दे मातरम्" कहकर चिल्ला उठे। बंगालके टुकड़े नहीं हुए, वरञ्च भारतके अन्यान्य टुकड़े भी वंगदेशसे आकर चमटे जाते हैं।

हां, एक बड़े ही पवित्र मेलको हमारे माइ लार्ड विच्छिन्न किये जाते हैं। वह इस देशके राजा-प्रजाका मेल है। स्वर्गीय विक्टोरिया महारानीके घोषणा-पत्र और शासन-कालने इस देशकी प्रजाके जीमें यह बात जमा दी थी कि अंगरेज प्रजाकी बात सुनकर और उसका मन रखकर शासन करना जानते हैं और वह रंगके नहीं, योग्यताके पक्षपाती हैं। कैनिंग और रिपन आदि उदार हृदय शासकोंने अपने सुशासनसे इस भावकी पुष्टि की थी। इस समयके महाप्रभुने दिखा दिया कि वह पवित्र घोषणा-पत्र समय पड़ेकी चाल-मात्र था। अंगरेज अपने ख़यालके सामने किसीकी नहीं सुनते— विशेषकर दुर्बल भारतवासियोंकी चिल्लाहटका उनके जीमें कुछ भी वजन नहीं है। इससे आठ करोड़ बंगालियोंके एक स्वर होकर दिन-रात महीनों रोने-गानेपर भी अंगरेजी सरकारने कुछ न सुना। बंगालके दो टुकड़े कर डाले। उसी माइ लार्डके हाथसे दो टुकड़े कराये, जिसके कहनेसे उसने केवल एक मिलिटरी मेम्बर रखना भी मंजूर नहीं किया और उसके लिए माइ-लार्डको नौकरीसे अलग करना भी पसन्द किया। भारतवासियोंके जीमें यह बात जम गई कि अंगरेजोंसे भक्ति-भाव करना वृथा है, प्रार्थना करना वृथा

है और उनके आगे रोना-गाना वृथा है। दुर्बलकी वह नहीं सुनते।

वंग-विच्छेदसे हमारे महाप्रभु सरदस्त राजा-प्रजामें यही भाव उत्पन्न करा चले हैं। किन्तु हाय! इस समय इसपर महाप्रभुके देशमें कोई ध्यान देनेवाला तक नहीं है! महाप्रभु तो ध्यान देनेके योग्य ही कहां।

('भारतमित्र', २१ अक्तूबर सन् १९०४)

---o o---